Brown Bookk

UNIVERSAL LIBRARY

OU_180396

UNIVERSAL LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 82/V 99 K Accession No. G.H. 172

Author व्यास, भैरूलाल

Title कारणा, 1948

This book should be returned on or before the date last marked below.

हिन्दी पुष्प—१

क रु णा

[हिन्दी सामाजिक नाटक]

लेखक

श्री भैरूलाल व्यास, साहित्य रत्न

प्रस्तावनाकार

श्री. सीताराम चतुर्वेदी,

एम्. ए. (सस्कृत; पाली; हिन्दी; प्रत्न—भारतीय इतिहास तथा सस्कृति);

बी. टी.; एलएल. बी.; साहित्याचार्य

प्रिन्सिपॉल—सतीशचद्र कॉलेज, बलिया

मूल्य १॥)

प्रकाशक

हिन्दी साहित्य समिति
महादेव गली, बेलगाम

मुद्रक

तरुण भारत छापखाना,
समादेषी गली, बेलगाम

प्रथम संस्करण

विक्रम संवत् २००७

सर्वाधिकार लेखकाधीन

दाता की ओर से

हिन्दी साहित्य समिति, बेलगाम बडे उत्साह से राष्ट्र–भाषा हिन्दी की सेवा कर रही है। जब हमें मालूम हुआ कि समिति की इच्छा हिन्दी ग्रंथ प्रकाशन की है तो हमने इस शुभ कार्य में हाथ बंटाना उचित समझा। हमने हिन्दी पुष्प १ के प्रकाशन के लिये होनेवाले खर्च को उठाने का तथा २०१) रु. नकद देने का नम्र प्रस्ताव समिति के अध्यक्ष महोदय की सेवा में रखा।

हमें गर्व है कि समिति ने हमारी सेवा ग्रहण की।

मारवाडी समाज
बेलगाम–शहापूर.

प्रस्तावना

संस्कृत के नाटकों में यह परिपाटी रही है, कि उनके प्रारंभ में ऐसी पूर्व रंग प्रस्तावना दे दी जाती थी जिस से नाटकीय कथा-वस्तु और नाटककार का कुछ परिचय मिल जाये। आजकल के नाटकों की परंपरा में लिखा हुआ यह 'करुणा' नाम का नाटक पूर्वरंग प्रस्तावना के स्वाभाविक अभाव में प्रस्तावना की आवश्यकता समझता है और इसीलिये मैं उसकी आवश्यकता और अपेक्षिता की पूर्ति करने के लिये उतर पड़ा हूँ।

प्रत्येक नाटक में अभिनेयता के गुण होने ही चाहिये। अन्यथा वह अंक विभाजन दृश्य, विभाजन संवाद शैली तथा रंग निर्देश का नाटकीय रूप धारण करते हुये भी नाटक नहीं कहा जा सकता। नाटक के रसत्व को उद्दीप्त करने के लिये यह अनिवार्य है कि संवादों की भाषा ऐसी बोधगम्य हो कि दर्शक उसे सरलता से समझ सकें। संवाद की शैली, प्रत्येक पात्र की व्यक्तिगत योग्यता, संयोग की योग्यता, परिस्थिति, भाव तथा मानसिक स्थिति के अनुकूल स्वाभाविक प्रतीत हो। दृश्यों के विभाजन रंग व्यवस्थापक के लिये असभव, दुरुह तथा अव्यवहार्य न हो। पात्रों की संख्या इतनी अधिक न हो और उनकी प्रकृति इतने विशिष्ट प्रकार की न हो कि नाट्य प्रयोक्ता को ऐसे पात्र ही ढूँढना असंभव हो जाये। और अंतिम किन्तु सर्वाधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि नाटक में अभिनेताओं के लिये आंगिक, वाचिक तथा सात्विक अभिनय की अधिकाधिक संभावना हो।

मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि 'करुणा' में ये सभी गुण विद्यमान हैं। लेखक ने एक सादी सी कहानी के द्वारा स्वार्थभावना की

विफलता चित्रित करने का प्रयत्न किया है। इसके सृष्टा श्री भैरूलालजी व्यास का मैं नाट्य जगत में स्वागत करता हूँ। विशेष इसलिये कि वे हिन्दी को अभिनय नाटक प्रदान कर रहे है।

मेरी मंगल कामना है कि उनकी नाट्य प्रतिभा और भी अधिक विकसित तथा समुन्नत हो कर राष्ट्र भाषा की नाट्यशाला का गौरव बढावे।

काशी
२३-११-४८

सीताराम चतुर्वेदी

लेखक की ओर से

मेरे पहले नाटक 'बहन का बदला' के पश्चात् मेरे सहयोगी तथा साथी मेरे दूसरे नाटक की प्रतीक्षा बडे उत्साह के साथ करने लगे। उनके उत्साह से उत्साहित हो कर मैं 'करुणा' ले मैदान में उतर पडा।

हिन्दी प्रचार सभा, बेलगाम ने 'करुणा'को रंगमंच पर बडे ही सफल ढंग से उतारा श्री. एस्. एन्. अंगडी, डि. स्पीकर, बम्बई प्रांतीय धारा सभा, बम्बई सरकार, की अध्यक्षता में। समाचार पत्रों और परेक्षकों ने 'करुणा' की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

सामाजिक स्वास्थ्य के लिये आर्थिक अथवा आधिभौतिक त्याग की तो बडी आवश्यकता होती ही है। इसकी महत्ता गांधी युग में बताने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। फिर भी आध्यात्मिक त्याग का सामाजिक स्वास्थ्य से और भी गहरा संबंध है। आधिभौतिक त्याग से समाज का व्यावहारिक जीवन शांतिप्रद हो सकता है परंतु आध्यात्मिक त्याग से समाजका आंतरिक जीवन शांति की ओर प्रवाहित होता है। इसी सिद्धांत को मैं नाटक के रूप में हिन्दी जगत के सामने रखने का धैर्य कर रहा हूँ। आशा तो रखता हूँ कि हिन्दी जगत् मेरे 'बहन का बदला' नाटक की तरह 'करुणा' का भी स्वागत करेगा।

'करुणा' को कई विद्वानों के आशीर्वाद प्राप्त हुये हैं। श्री. कृ. रा. परांजपे, बी. ए., एस. टी. सी., साहित्यरत्न ने नाटक को बडे परिश्रम से मांजा है। 'भँवरा प्यारा' पद्य के लेखक श्री. रामचंद्र नाडगोडा बी. ए., बी. टी., साहित्य विशारद ने कडी आलोचना की कसौटी पर कस कर इसे निर्दोष बनाने का प्रयत्न किया है। रंगमंच पर लाने में हिं. प्र. सभा, बेलगाम के प्रधान मंत्री श्री. भा. वि. पुणेकर बी. ए., बी. टी., रा. भा. कोविद ने भरपूर श्रम उठाया

है । साथ ही साथ दिग्दर्शक तथा अभिनेताओ के परिश्रम की सराहना करते हुये मै सबका आभारी होनेमें गर्व का अनुभव करता हूँ ।

श्री चतुर्वेदी जी ने नाटक की प्रस्तावना लिख कर मुझे उत्साहित किया है ।

श्री दिवाकर जी ने मेरी इस कृति को स्वीकार करके मुझे उपकृत किया है । भूलने पर भी न भूलने वाली बात है पडित सिद्धनाथ पतजी का सहयोग । आप ने हर प्रकार से मेरी सहायता की है ।

मै इन सब विद्वानो का कृतज्ञ हूँ ।

मुझे यह लिखते हुये अभिमान होता है कि 'करुणा' को श्रीमन् राजा महाराजसिह, राज्यपाल [गवर्नर] बम्बई राज्य, के करकमलो से प्रकाशित होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है ।

मुद्रण शुद्धि के लिये श्री. रघुनाथ मगेश रा. भा. रत्न, श्री. द. पा. साटम साहित्य विशारद, ने काफी श्रम उठाया है । मुख-पृष्ठका चित्र निस्वार्थ भावसे कलाकार श्री. एम्. विजापुरे ने बडी लगन से तैयार करके मुझे उपकृत किया है । थोडे ही से समय मे व्यवस्थापक, तरुण भारत छापखाना, ने नाटक को मुद्रित करके हमारी अमूल्य सहायता की है ।

मै इन सब का तथा मेरे अन्य सहयोगियो का हृदय से आभारी हूँ।

लेखक

माननीय श्री. रंगराव दिवाकर,

मन्त्री—सूचना और नभोवाणी विभाग, भारत सरकार—
भू. पू. अध्यक्ष कर्नाटक प्रां. हि. प्र. सभा, धारवाड—

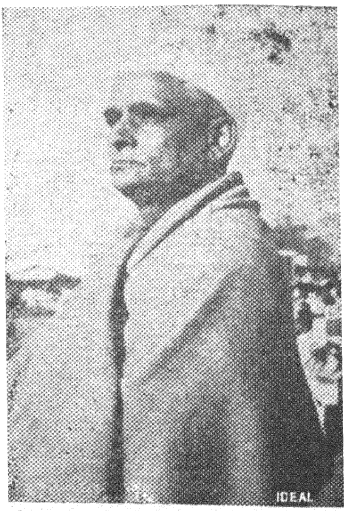

दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचार कार्य में लगी आपकी श्रेष्ठ सेवा को—

सादर समर्पित

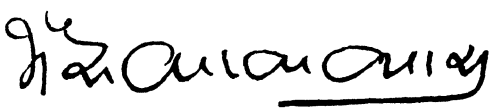

ता. ११-७-१९४८ को यह नाटक रिझ थियेटर, बेलगाम में पहली बार श्री. एस्. एन्. अंगडी, डि. स्पीकर, बम्बई राज्य धारासभा, की अध्यक्षता में सफलतापूर्वक खेला गया। उस समय नीचे लिखे कलाकारों ने अभिनय किया।

पात्र		अभिनेता
करुणा	...	कु. कुसुम शिकारपूरकर, रा. भा. कोविद
नलिनी	...	कु. सिन्धू देशपांडे, प्रथम वर्ष आर्ट्स
प्रेमा	...	... सौ. शशिकला भानप.
प्रबोध	...	श्री. भालचंद्र वासुदेव भानप, एम. ए.
प्रताप	...	... श्री. अनन्तराव देशपांडे
अरुण	...	...श्री. दादासाहेब नाईक, वकील
मोतीराम		" श्याम जोशी
दिग्दर्शक	...	श्री. बा. शि. शिरवईकर, श्री. दादासाहेब नाईक
संगीत दिग्दर्शक	...	श्री. अनन्तराव देशपांडे
वेषभूषा और रंगभूषा	...	श्री. एम्. हरिहर आर्टिस्ट
रंगमंच व्यवस्थापक	...	श्री. श्याम जोशी
पांडुलिपिकार	...	कुमारी छबू मराठे, रा. भा. कोविद

करुणा

★ ★ ★

अंक पहला

समय:—करीब प्रातः १० बजे

स्थान:—श्री प्रबोध के मकानमें नलिनी का कमरा। आधुनिक ढंग से सजा हुआ।

[गुनगुनते हुअे नलिनी का प्रवेश। आज ही आया मासिक मेज की ओर फेंकते हुअे कोच पर पड जाती है। बडे लाडले ढंगसे उठकर शृगार दान की ओर जाती है। वेणी ठीक करती है। दर्पण में देखती हुअी हाव भाव से धीरे धीरे गाती है। फिर चंचल लडकी की तरह उछल कूद करती मस्त गायन गाती है।]

गायन

थिरक थिरक कर पैर उठे
मटक मटक कर हाथ उठे
मेरे नैनों के बाणों से
सारे भौंरे चौंक उठे।
मैं कलि बनी मुस्काऊँगी
तितली बन उड जाऊँगी
मेरे रस के झोंकों से
सारी दुनिया डोल उठे।

नलिनीः—[घडी पर दृष्टि पडते ही] अरे! दस बज गये! अरुण नहीं आया? [अरुण के बोलने की नकल करती हुअी] नल्! डर मत। मैं ठीक दस बजे तेरे यहाँ—तेरे कमरे में रहूँगा। [मुस्कराती हुअी शृंगार-दान की ओर बढती बढती] ये हैं अरुण के वचन! [दर्पण में अपनी छायासे] सुना री तू ने, नल्? 'प्राण जाय पर प्रण न जाअी'। बेचारे तुलसी दास जी को यह कहाँ मालूम था कि अब रघुवंशी जमाना लद रहा है। अब तो 'प्राण जाय पर जीभ न जायी' का जमाना है। (कोच की ओर आते आते] अच्छी बात है। आज है रविवार। कॉलेज तो जाना है नहीं। आने दो सवारी को—वह फटकार बताऊँगी कि बस— आगे से देर करना भूल जायेंगे, साहब! यहाँ क्या बी. ए. का अध्ययन थोडा ही है जो नलिनी पहला नंबर नहीं मार सकती? [प्रताप का प्रवेश]

प्रतापः—म ने कहा— प्रताप कहता है—नमस्ते। [नलिनी संभलती है।] चौंकती क्यों हैं? यह तो, आपका प्रताप ही तो है।

नलिनीः—नमस्ते जी।

प्रतापः—शायद मेरा आना आपको नहीं भाया। किस भाग्यशाली की बाट देखी जा—

नलिनीः—आपका मतलब? हाँ, मैं बाट देख रही हूँ। आगे आप का क्या कहना है? फरमाअिये, मैं किस सेवा के योग्य समझी गअी हूँ? अच्छा हो, अगर आप फिर किसी समय कष्ट फरमायें।

प्रतापः—अगर मेरा बस चलता तो शायद मैं आपकी आज्ञा का उल्लंघन न करता। मैं क्या करूँ? अिस मामले में मेरा बस नहीं। अगर चुम्बक पूछे—लोहा, मेरे पास क्यों आता है? तो गरीब का जवाब हर कोने से अेक ही दिया जायेगा। नलिनीदेवी वह उत्तर आप भी जानती हैं।

नलिनी:—प्रेमियों के लिये उपमा—चकवा—चकवी अथवा चाँद चकोर की दिया करते हैं। लोहा और चुम्बक की कुछ ठीक नहीं जँचती। अच्छा हो अगर आप किसी रीतिकालीन कवि की कवितायें पाठ कर लें।

प्रताप:—कल-युग में कल की उपमा तो ठीक ही थी। मगर जाने दो। अगर आप को रीतिकालीन ही ठीक जँचता हो तो वही सही। क्यों कि मेरे तो आप ही आकर्षण हैं।

नलिनी:—[हँसकर] सचमुच, आप दुनियासे काफी अलग हैं। आप को कैसे मालूम हो कि जगमें सोना पाने के लिये लोहा लिया जाता है।

प्रताप: – जिसके हाथ लोहे के हों—वे ही जग के भूषण माने जाते हैं। फिर प्रेम तो लोहे या सोने का भेद देख ही नहीं सकता। नलिनी, आप मुझ से दूर दूर क्यों रहती है? क्या मेरे पास हृदय नहीं है?

नलिनी—धत् तेरे की! यह क्या सुन रही हूँ मैं? क्या आपका हृदय आप के ही पास है? फिर बेचारी रेखा, सुधा, कमल आदि के पास क्या छोड आये हैं? कदाचित –

प्रताप –नलिनी, मेरे हृदय के टुकडे टुकडे कर रही हैं, आप!

नलिनी:—तब तो मैं आप की सहायता ही कर रही हू, प्रताप! आप के हृदय के टुकडे मैं कर रही हूँ—आप के लिये और टुकडों के बाँटने के काम आप अच्छी तरह से कर ही सकते हैं।

प्रताप:—कभी सीधे मुँह बोलोगी भी? अेक कॉलेज के—अेक कक्षा के सहपाठी हम! मगर आप तो मुझे अछूत की तरह —

नलिनी—अछूत तो भगवान हैं। बाकी सब तो छुये जा सकते हैं।

प्रताप:--आप का हृदय भी ? मगर आप तो हमसे सदा दूर ही रहा करती हैं।

नलिनी:—जी। क्यों कि मुझमें सटे रहने की आदत नहीं है। प्रतापबाबू ! आखिर हम मनुष्य हैं न ? टिपिन सेट तो हैं नहीं, जो अेक साथ तीन चार सेट अोर सटाये जा सकें।

प्रताप:—आपका यह अिशारा रेखा–सुधा अोर कमल के लिये है। लेकिन मैं आपको उस सेटमें नहीं मिला रहा हूँ। मैं विश्वास दिला सकता हूँ कि अब मैं उन सबसे अलग रहूँगा। नलिनीदेवी ! आप तो जानती हैं, मैं ने कहा–आप से छिपा थोडे ही है मेरा हृदय ! जब अच्छा दूध नहीं मिलता तो पानीवाले दूध पर ही संतोष करना पडता है। इस में मेरा क्या दोष ?

नलिनी:—क्या खूब उपमा दी है ! नारी को तोलना आप ने कितना सरल बना दिया ! बलिहारी ! यह तो कृपा हुअी जो गाय की उपमा न दी।

प्रताप:—गलती हुअी ? क्षमा करें। मैं कोअी कवि नहीं।

नलिनी:—हाँऽऽ ! आप कवि तो नहीं। मगर कवियों के अन्नदाता तो हैं ! आप बडे प्रकाशक ठहरे ! कविता ही क्या, कवि को बनाना भी आप के बाँये हाथ का खेल है।

प्रताप:—अगर वह सब मैं आप के हवाले कर दूँ तो ? मगर आप न लेंगी।

नलिनी:—बिलकुल ठीक निकला श्रीमुखसे। नलिनी अब भी अितनी गरीब नहीं जो चाँदी के घुँघुरोंपर थिरक उठे।

प्रताप:—प्रताप का हृदय तो नलिनीदेवी के इशारों पर नाच उठ सकता है। नलिनीदेवी, मैं आप के साथ बड़ा प्रसन्न रहता हूँ। आप का व्यंग मेरे हृदयमें कोमल बन कर ही घुसता है। इच्छा होती है कहीं हो आयें।

नलिनी:—बड़े आनंद से।

प्रताप:—तो बॉक्स रिझर्व करवा लूँ। बड़ा अच्छा सिनेमा चल रहा है।

नलिनी:—जी नहीं।

प्रताप:- 'बहन का बदला' नाटक चल रहा है। वहाँ चलें?

नलिनी:—आप देख आयें। मैं ने तो दो तीन बार देख लिया है।

प्रताप—तो फिर अेक बार ओर सही। अच्छा, तो चलो—कहीं घूमही आयें।

नलिनी—क्षमा करें। मैं नहीं आ सकती आप के साथ। मुझे आवश्यक कार्य के लिये जाना है।

प्रताप:—कहाँ? मोटर से छोड़ आऊँ—चलिये।

नलिनी:—बस आप की कृपा चाहिये। मेरे साथ अरुण जानेवाले हैं।

प्रताप:—अरुण! वह गँवार आप के साथ? उसके पास है क्या? पांच चार हजार की आसामी नहीं। बाप दादो ने गांव में जिन्दगी काट दी थी ओर यह भी गांव में ही मर जायेगा।

नलिनी:—शहर में तो लोग अमर ही रहते हैं! रही पैसों की बात! सो मुझे किसी के पैसों से क्या मतलब?

प्रताप:—नलिनी, तुम छुपा रही हो कुछ। पर प्रताप से छिपाना इतना आसान नहीं। दो चार पंक्तियाँ जोड़—जोड़ कर सुना देने वाला यह

अरुण—प्रोफेसर प्रबोध के यहाँ टुकड़े तोड़ रहा है। इसे कुछ तो शर्म आनी चाहिये थी। और ऊपर से जब देखो—छाया की तरह तुम्हारे पीछे-पीछे और तुम—तुम—

नलिनी:—रुकिये मत। कहते जाइये। हां, अरुण के पीछे मैं लगी रहती हूँ। आगे आप का क्या कहना है?

प्रताप:—मेरा तो कहना आप क्यों सुनने लगीं। पर दुनिया के मुँहपर ढक्कन नहीं रखा जा सकता। बच्चे बच्चे के मुँहपर यह बात है। यह अरुण आया छाछ के लिये और घर का मालिक बन बैठा। कौन किसकी जीभ पकड़ सकता है? मैं तुम्हें चेताये देता हूँ, नलिनी! अरुण के साथ यों भटकना अच्छा नहीं। लोग क्या कहेंगे?

नलिनी:—कम से कम वह तो न कह सकेंगे जो आपके साथ रहने पर कहते।

प्रताप:—तुम अपने आप को धोखा दे रही हो। कहाँ राजा की रेवाड़ी और कहाँ नाऊका छाती कूटा? पेट्रोमेक्स और जुगनू की क्या बराबरी?

नलिनी:—क्या खूब कहा आपने! पेट्रोमेक्स! सचमुच आप ही हैं। बेचारा दूसरों की सहायता के बिना प्रकाश दे ही नहीं सकता। और जुगनू! छोटासा होने पर भी स्वयं प्रकाशवान है। दुनिया में छोटा होना अपमान नहीं—दूसरोंपर निर्भर रहना अपमान है। गुलाम होकर जीना और मरना समान ही है।

प्रताप:—गुलाम! (मुस्कराकर) जरा सोचो—समझो—अरुण गुलाम है या प्रताप! मेरे पास पैसा है। अखबार हैं। मैं दुनिया को झुका सकता

हूँ। मुझे दुनिया नहीं झुका सकती। मैं किसी का गुलाम नहीं—गुलाम रखने की हिम्मत रखता हूं।

नलिनी:—गुलाम रखनेवाला ही सबसे बड़ा गुलाम है। स्वतंत्र वह है जो सब को आजाद कर सकता है और आजाद देख सकता है। पर आपसे वाद-विवाद करने की मेरी इच्छा नहीं।

प्रताप—उस बर्मीने अरुण से तो घंटों जीभ लड़ाया करती हो।

नलिनी:—प्रताप आप सीमा से बाहर जा रहे हैं।

प्रताप:—और आप मर्यादा से। अच्छा यही है कि आप अरुण से संबंध छोड़ दें।

नलिनी:—और प्रताप से नाता जोड़ लूँ?

प्रताप—आप तो समझदार हैं। अपना सुख किसे नहीं भाता?

नलिनी:—मैं ऐसे सुखपर थूँकती भी नहीं।

प्रताप—तुम प्रताप का अपमान कर रही हो, नलिनी। इसका फल अच्छा न होगा।

नलिनी—देखा जायेगा। आप जा सकते हैं।

प्रताप—अच्छी बात है। प्रताप जाता है। पर सचेत किये जाता है कि तुम चेत जाओ। और सुनो—मेरी भविष्यवाणी! नलिनी या तो प्रताप की होगी वरना मिट्टीमें मिला दी जायेगी।

नलिनी—कॉलेज में भी श्रीमुख से यों मोती झड़ चुके हैं। जरा कान खोलें। यहाँ रेखा और सुधा तो है नहीं जो धमकी असर कर जाये। अंधों को चाहिये कि वे देखें, सामने नलिनी है। आप जा सकते हैं। आप को शर्म आनी थी। आप दूसरों के दरवाजे पर खड़े रह कर भिखारी से दाता बनने का प्रयत्न कर रहे हैं।

प्रताप—यह तो तब मालूम होगा जब नलिनी तो क्या उसका बाप प्रताप के द्वार खटखटायेगा।

नलिनी:—आप जाइये यहाँ से। चले जाइये! जाओ! (प्रताप हँसता है।) (मोतीरामजी का प्रवेश। प्रताप गंभीर सा बन जाता है।)

मोतीराम:—प्रताप! यह क्या लिख मारा तुमने अपने अखबारमें? क्या नलिनी के सिवा और कुछ विषय भी न था?

प्रताप:—(हँसता हुआ) यह अपनी लाडली बेटी नल्लू से पूछें, मोतीरामजी। मुझसे क्या पूछते हैं?

मोतीराम:—मेरे सफेद बालों पर तो तरस खाना था, प्रताप! कमसे कम प्रकाशित करने से पहले मुझ से मिल तो लेना था। नल्लू! तू ने यह कैसा नाटक खेला, बेटी! भोली लडकी! अखिर दुनिया ने तुझे ठग ही लिया। तू नहीं जानती इस निष्ठुर समाज को। अब कौन सहारा तेरा, मेरी बिटिया? देख, पढ अपनी कृष्णलीला! (मोतीराम अखबार उसे देते हैं। नलिनी उसे जमीन पर फेंक देती हैं। प्रताप हँसता है)

नलिनी—प्रताप, निकल जाओ यहाँ से।

प्रताप—(मुस्कराता हुआ) जैसी आज्ञा! पर हाँ, मुझे जल्द ही लौट आना है। प्रबोध से मिलना भी जरुरी है। नमस्ते, मोतीरामजी।

(प्रताप निकल जाता है। मोतीरामजी मूर्तिवत् खडे रहते हैं।

मोतीराम—ओह! प्रताप! कितना निर्दयी है तू! क्या गरीबों को सताने के लिये ही अखबार चलाता है? किस को दोष दूँ? नल्लू! मेरी बिटिया! इसमें तेरा दोष नहीं। अगर मैं दिवालिया न होता तो किसकी हिम्मत थी जो मेरी बेटी की ओर उँगली भी उठाता? पर क्या करूँ?

नलिनी - पिताजी ! आप व्यर्थ अपने आपको कोस रहे हैं। आप इस प्रताप के झंझट में न फँसे। बड़ा नीच है यह। घर घर आग लगाता फिरता है।

मोतीराम—यह प्रताप की ही दुनिया है। तू इसे नहीं समझ सकती ! मेरी बच्ची का भविष्य ! नहीं—नहीं, मैं उसे नष्ट न होने दूँगा। मैं प्रताप से भीख माँगूँगा। प्रताप ही अब यह गुँथी सुलझा सकता है। (जाने लगते हैं।)

नलिनी—पिताजी ! कहाँ जा रहे हैं ? प्रताप के घर ? यह न होगा। आप वहाँ न जायें। (नलिनी पड़े अखबार को उठाती है।) आखिर इस अखबारमें क्या छपा है ?

मोतीराम—(नलिनी के हाथ से अखबार छीनता है।) अब तेरे देखने से कुछ न होगा। प्रताप को ही हमारी ओर देखना चाहिये। मैं वहीं जाऊँगा।

नलिनी—हर्गिज नहीं। यह अपमान मैं सह नहीं सकती।

मोतीराम—पगली, माँ बाप अपने बच्चों के भविष्य के लिये सबकुछ सह सकते हैं। यह तो क्या, इस से चौगुने अपमान की घूँट भी मैं तेरे लिये पी सकता हूँ ! नलू ! मुझे न रोक बेटी ! मेरा रास्ता छोड़ दे, मेरी बिटिया। अगर मुझे मालूम होता कि कॉलेजी जीवन तुझे ऐसे बखेड़ों में फँसा देगा तो मैं तुझे इससे अलग रखता ! कॉलेज को कोसने से क्या लाभ ! नलिनी ! आज से तेरा अरुण से मिलना जुलना बन्द ! (नलिनी चौंकती है) चौंकती क्या है ? यह तेरे उस अरुण की कृपा का फल है जो रात दिन तेरे साथ रहा करता है। समाज यह क्यों देखे ? प्रेम ! जा, अन्दर जा। (आवेश में निकल जाता है।)

नलिनी—(आगे बढकर) पिताजी ! चले गये ! आखिर अखबारमें ऐसा क्या होगा ? ऊँह ! होगा । मुझे क्या ! (किताबें लेकर पढना चाहती है । मन नहीं लगता । शृंगारदान के सामने खडी रहती है । मुस्कराती है । गुनगुनाते गुनगुनाते पहले हालाही गाना गाने लगती है । फिर गाना अधूराही छोडकर पुस्तक के पन्ने उलटती हुअी) उस अखबार में क्या था ? (अरुण का प्रवेश । नलिनी विचारमग्न)

अरुण—नलू ! बताओ तो आज मैं कौन सी खुश-खबरी लाया हूँ ? नलू ! (पास जाकर) बताओ न—अरुण आज इतना प्रसन्न क्यों है ? (नलिनी गंभीर होती है ।) जब बता नहीं सकती तो तू यों ही ढोंग किया करती है । (घडी की ओर दृष्टि पडती है । मुस्कराकर) ओह । समझ गया । मेरी प्रतिक्षा में बैठे रहना पडा न तुम्हें ? बस, इसीलिये तो हो न नाराज ? पर मेरी बात सुनकर तुम्हारा गुस्सा हवा में पंख लगाकर उड जायेगा ! (अेक पत्र निकालकर) यह देखो, माताजी का पत्र आया है । उन्होंने लिखा है कि दिवाली की छुट्टियाँ गाँव में ही बिताअीं जायें । और वे भी नलू के साथ ।

नलिनी—अरुण ! मैं कुछ भी सुनना नहीं चाहती । आप जायें । चाहे जहाँ जायें । मुझे आप से कोअी सरोकार नहीं ।

अरुण—क्या कह गअी री तू ? [कागज मेज पर रखता है ।]

नलिनी—कह तो दिया--आप चले जायें । [कुछ ठहरकर आवेश में] मैं ने आप से कब कहा था कि मैं आप से प्रेम करती हूँ ? [धीमी आवाज से] मैं अरुण से प्रेम क्यों करने लगी ?

अरुण—आप ठीकही फरमाती हैं । आप ने तो कभी अरुण से प्रेम नहीं किया जतलाया । हाँ, अरुण से रहा नहीं जाता ।

नलिनी—तो इस में मेरा क्या दोष! मैं तो किसी से प्रेम नहीं करती। दुनिया को तो मैं रोक नहीं सकती।

अरुण—लेकिन मैं ने कब कहा है कि आप रोकें? आखिर बात क्या हुअी जो आप आँधी बन बैठी हैं इस अढाअी अक्षरके प्रेम पर? मैं सोचता हूँ—यह कोअी इतनी बुरी चीज तो है नहीं जो—

नलिनी—कोई चीज अच्छी है या बुरी—इससे मेरा कोई सरोकार नहीं। मगर मैं इसे नहीं मानती। मैं किसी से प्रेम नहीं करती। फिर इस प्रेम ने मेरे पिताजी को दुखी क्यों बनाया? आजादी मिल जाने के बाद भी इन अखबार वालों को दूसरा विषय नहीं सूझता! तुम ने 'साँवरा' दैनिक देखा है? प्रताप ने मेरे विषय में क्या छाप दिया है उस में?

अरुण—'साँवरा' दैनिक? उसमें छपी होगी—कृष्ण—लीला!

नलिनी:—जिसे आज की दुनिया कहती है—प्रेमलीला!

अरुण—आपका मतलब?

नलिनी:—देखो जी! मैं यहाँ व्याख्या करने नहीं बैठी हूँ। आप जा सकते हैं।

अरुण—जी, मैं जा और आ दोनों कर सकता हूँ।

नलिनी—मैं कुछ भी सुनना नहीं चाहती। और सुनो—अरुण को समझ लेना चाहिये कि नलिनी किसी से प्रेम का नाम तक सुनना नहीं चाहती। अच्छा, नमस्ते। [विचार मग्न होती है।]

अरुण—ठीक है! नमस्ते! (दरवाजे के पास जाकर)

गायन

डाली से मैना बोले
मैं ना मैं ना बोलूँ।
मैं ने सोचा, क्या बोले?
मैंना मैं ना बोले?
ना चोंच हिली, ना डाली री
उसकी आँखे यों बोले—
गा रे साजन होले होले।
डाली से मैना बोले।

(गाने के बीच बीच में अरुण उसकी ओर देखता है। वह भी छिपी छिपी मुस्कराती है।)

कोई अन्दर है? (खाँसकर) मैं ने कहा—अरुण है। क्या पास आ सकता है? (खँखारकर) अरुण सोचता है कि कुछ गहरा विचार चल रहा है जी इस नारियल सी खोपडी में! अरेरे! कितनी रुक्ष उपमा दे डाली? क्या अरुण का इसमें कुछ दोष नहीं। विद्वान कहते हैं—हृदय से मस्तिष्क काफी सख्त होता है। क्या अरुण का सोचना ठीक ठहरनेवाला है?

नलिनी:—[मुस्कराकर—बिना देखे ही] बिलकुल झूठ।

अरुण—मगर अरुण की बात की हामी नलिनी की सूरत से मिल रही है। चाहे तो दर्पण में श्रीमुख निरख लें।

नलिनी—जरा आप ही अरुण-मुख की आभा की झलक ले लें।

अरुण—सो तो मैं ले रहा हूँ। [अरुण टकटकी लगाये नलिनी की ओर देखता है। नलिनी सोचती है कि अरुण शृंगारदान के सामने है।]

नलिनी—देखो! फेस पावडर पडा है—पोत लो। लिपस्टिक और क्रीम भी वहीं पर है! (मुस्कराती है। अरुण को अपनी ओर टकटकी लगाये देख कर) ओ! [लजाती हुई मुँह फेर लेती है।]

अरुण—यह बात! जरा देखो न, कितनी सुंदर लगती हो तुम!

नलिनी—हाँ, हम सुंदर लगती हैं। आगे क्या कहना है आपका?

अरुण—बस यही कि तुम सदा सुंदर बनी रहो।

नलिनी—अच्छा, बनी रहेंगी। नहीं, नहीं, हम सदा सुंदर बनी नहीं रहतीं। आगे क्या कहना है आपका?

अरुण—आगे? आगे और पीछे! हमारे लिये सब बराबर! पर जग कहेगा—अच्छा होता अगर नलिनी सदा सुंदर बनी रहती।

नलिनी—जग जाये चुल्हे में। पेट में चूहे कूदते हैं पर चले हैं प्रेम के पीछे! 'प्रेम!' क्या होता है? क्यों होता है? कैसे होता है? और कौन करता है?—बताओ न?

अरुण—बताना ही पडेगा। वैसे तो दूध मुँहे बच्चे से लेकर मौत की गोद में पडे बुढ्ढे तक इस ओर झपटते देखे जाते हैं। मगर मुझे वहाँ तक उडान नहीं करनी है। मैं तो कहूँगा—नलिनी फूलसे प्रेम करती है और अरुण उसके फूल को 'अमोलक हीरा' समझता है।

नलिनी—बिलकुल गलत। कौन कहता है कि मैं फूल से प्रेम करती हूँ। हाँ, वह मुझे सुन्दर अवश्य लगता है।

अरुण—और वही नलिनी—पुष्प मुझे मोहक लगता है।

नलिनी:—लग सकता है। मगर यह प्रेम का बखेड़ा बीच में क्यों? अगर तुम चाहते हो कि नलू तुम्हारे साथ रहे तो पहले इस प्रेम के झंझट को वापस सात समुद्र पार पहुँचाना होगा। है स्वीकार?

अरुण—हमें तो कब से मंजूर है। [नलिनी अरुण की ओर देखकर मुस्कराती है। अरुण भी मुस्कराता है।]

नलिनी:—अरुण! [आनन्द में होकर] अरुण! [कागज उठाकर पढ़ती है।]

अरुण—उस तरफ पढ़ो। इस ओर तो मैं ने आते आते एक कविता लिख डाली है। जरा पढ़कर सुनाओ न! तुमने मेरी वह दूसरी कविता पढ़ी थी?

नलिनी—जो 'माधुरी' में छपी है—वही न? अजी, ऊँह! उसे क्या कविता कहा जा सकता है। उन संपादक महोदय ने, बस, भँग के नशेमें प्रशंसा कर डाली होगी। कह तो दिया—हमें वह कविता बिलकुल पसन्द नहीं। हाँ, वैसे पढ़ तो हम ने भी ली है उसे दस पाँच बार! पर पसन्द नहीं तो हम क्या करें?

अरुण—आप कृपा करके इस कविता को पढ़कर सुना दें। बस, और कुछ न करें।

नलिनी:—हम क्यों सुनायें? कवि महाराज के श्रीमुख से होने दो न! अच्छा सुनाइये। हम सुन लेंगी। [बैठती है।]

अरुण—जी नहीं! कवियों को चन्द्रमुखी से विशेष आकर्षण होता है। कृपया, सुना दे न! आप बड़ी अच्छी हैं।

नलिनी—अच्छा, तो यों समझ लें—आप बड़े अच्छे हैं। सुनाइयेगा न ?

अरुण—बस, रोज रोज यों ही तँग किया करती हो, तुम ! जाओ, हम रूठ गये।

नलिनी—[रूठे हुये अरुण के पास जाकर] नहीं—नहीं—रूठ ते क्यों हैं ? हम सुना जो रही हैं। [अरुण मुस्कराता है।] जाओ, हम नहीं सुनातीं। [धीरे से एक ओर हटकर गायन शुरू करती है।]

गायन

भौंरा प्यारा लिये हिलोरे
कलि खिले तब आता है।
थिरका थिरका अंग अंग को
परस, चूम कर गाता है।
कलि कलि भी सहम सहम कर
हिलमिलती मुसकाती है।
काँटों की परवाह, पतझर की
चिन्ता, क्या उस युग को है।

नलिनी—क्यों, पसन्द है न अरुण को कविता ?

अरुण—सचमुच, तू कवि है, नलू ! कितनी सुरस बनी है तेरी यह कविता ! अच्छा ही हुआ जो मेरी कविता न पढ़ी। वरना फीकी पड़ जाती बिचारी !

नलिनी—अपनी प्रशंसा सुनने के लिये मैं ने अपनी कविता नहीं सुनाई है।

अरुण—कोई भी मासिक इसे सहर्ष प्रकाशित करेगा। पर तुम तो कहीं भेजने का नाम तक नहीं लेती।

नलिनी—सम्पादक तुम्हारे जैसे स्त्रीदाक्षिण्य नहीं दिखाते। (मुस्करा कर) अरे हाँ, तो अब चलना है या नहीं रतन के यहाँ! बेचारी बाट देख रही होगी कब से।

अरुण—(घड़ी देखकर) ओह! जरूर चलना है। चलने के लिये ही तो आया हूँ। जरा करुणा भाभी से मिल आता हूँ।

नलिनी—करुणा दीदी से? हो आओ। मगर दीदी ने मुझे तो अपने कमरे में न बैठने दिया। आज वह कुछ अधिक गंभीर जान पड़ती थी। मैं चुपचाप आने लगी तो बोली—नटखट! मुँह फुलाये रहना ठीक नहीं। हँसती कूदती चल भाग यहाँ से। फिर मैं उसके हाथ की हल्की चपत खाकर भाग आयी हूँ यहाँ।

अरुण—तो मैं भी चपत खाये आता हूँ। (जाने लगता है। वापस मुड़कर) अरी! आज कल भाभी कुछ अनमनी सी रहती है। क्या कारण हो सकता है इसका? तू कुछ बता सकती है?

नलिनी—अजी वही प्रताप! उसने दीदी को बताया है कि—

अरुण—क्या बताया है?

नलिनी:—यही की प्रोफेसर प्रबोध **और** प्रेमा में घनिष्ट प्रेम था! प्रेमाने ही कह सुन कर दीदी और प्रोफेसर साहब का ब्याह करवाया।

अरुण—करुणा दीदी तो प्रोफेसर साहब को चाहती थी।

नलिनी—हाँ, यह सब कुछ प्रबोध बाबू और प्रेमा को मालूम था। परन्तु दीदी को यह मालूम नहीं था कि प्रेमा प्रबोध से प्रेम करती है।

अरुण—लेकिन अब तो मामला साफ है। करुणा का ब्याह हो चुका है। अब कैसा रगडा?

नलिनी:—हाँ, 'घायाल की गति घायाल जाने, और न जाने कोय।' जब प्रताप ने यह कहानी सुनाई तो पहले तो दीदी ने घर से भाग जाने की ठान ली। किन्तु कुल को कलंक लगने का भय था न? वह भाग न सकी। मैं इस मामले में पडना चाहती थी। पर क्या करूँ? दीदीने सौगन्ध दिला दी है कि मैं न तो इसकी चर्चा ही किसी से करूँ और न कुछ प्रयत्न भी करूँ। अगर मैं कुछ उपाय सोचती हूँ तो डर है कि दीदी को बडा दुख होगा। उसका हृदय बडा ही कोमल है। वह अपने सुख को प्रेमा के जीवन से छीना—लूटा हुआ समझती है। वह उसे फिर से सुखी देखना चाहती है।

अरुण—यह आत्महत्या है। मैं भाभी से—

नलिनी—अरुण! ठहरो। उसका कहना है कि यह भेद खुल जानेपर प्रेमा और प्रोफेसर साहब दोनों दुखी हो जायेंगे। इस से दुख घटेगा नहीं।

अरुण—सत्य है, नलू! भाभी का कहना ठीक है। तभी वह प्रबोध बाबू के संकेतों पर नाचती है।

नलिनी:—पर प्रबोधबाबू ने दीदी को कई बार पूछा भी है कि वह क्यों घुली जा रही है।

अरुण—यह तो सच ही है। यह कैसा प्रेम! जग और प्रेम! नलू, अच्छा ही है कि तुम इस प्रेम से दूर हो! प्रेम! प्रेम!

नलिनी—वाह! खूब माला जप रहे हो! जरा हिमालय की ओर मुख करो। फल मिल जायेगा तपश्चर्या का।

अरुण—हाँ, नलू उडाओ धजियाँ इस प्रेम की! प्रेम!

[करुणा का प्रवेश]

करुणा—(दचक कर) क्या कहा, अरुण! (धीरे से) प्रेमा!

अरुण—नमस्ते भाभी। मुझे आपसे शिकायत है। आप दिन पर दिन घुली जा रही हैं।

करुणा—मैं मुस्कराने का खूब प्रयत्न किया करती हूँ। पर विवश हूँ, अरुण! नलू! तुझे वह गायन याद है— 'सम्भल सम्भलकर चलना प्रेमी'।

नलिनी:—दीदी! गाऊँ?

करुणा—नहीं—नहीं—मुझे कुछ भी नहीं सुनना है। तुम दोनों मेरे कमरे में बैठो। मैं यहाँ रहना चाहती हूँ। मुझे अकेली रहने दो! [कोच पर बैठती है।]

नलिनी:—दीदी! तुम्हारा स्वास्थ्य —

करुणा—घबराती क्यों हो? यह करुणा इतनी जल्द नहीं मरेगी।

अरुण—भाभी! यह आप अपने पर अन्याय कर रही हैं।

करुणा—[गंभीर] तुम ठीक कहते हो, अरुण। नलू!

नलिनी—[करुणा की गोदमें मुँह छिपा लेती है। अरुण भी कुछ पास आता है।]

करुणा—[केशोंपर हाथ फेरती हुई] नलू!

नलिनी—[ऊपर सिर उठाकर देखती है] दीदी!

करुणा—पगली! बडी बहन के लिये रोती है? पर दुनिया उसे ही चाहती है जो खुद के लियेही रोता है। अरुण! एक कहानी सुनोगे?—एक उदार हृदयी! लक्ष्मी राजी उससे! उसका एक धनवान सुन्दरी से प्रेम! दोनों प्रसन्न। एक लडकी—जिसके पिता से लक्ष्मी रूठ गई—उससे प्रेम करती—! पर इस लडकी को यह कल्पना भी कहाँ कि उस युवक को उसकी प्रेयसी मिल चुकी है! वह सुन्दरी बडी उदार! उसने अपने प्रेमी का हाथ उस गरीब बने धनी की लडकी के हाथ में दे दिया! विवाह हो गया! पर क्यों हो गया, जानते हो कुछ? बता सकोगे कुछ? मैं बताती हूँ। उसकी इच्छा! वह अपने प्रेमी को बदनाम नहीं होने देना चाहती थी। लोग उसके साथी को कहे—'इसने गरीब का प्रेम गरीबी के कारण ठुकराया।' वह कैसे सहन करे? उसने अपने प्रेमी को इस झूठी दुनिया के सामने भी ओछा न ठहरने देने के लिये यह सब कुछ किया।

अरुण—यह सब कल्पना है, ढोंग है, भाभी!

करुणा—चुप रहो। मैं उस देवी की निन्दा सुनना नहीं चाहती। उसने जानबूझकर अपना जीवनधन मेरे हवाले किया! (अरुण चौंकता है।) केवल दो वर्ष पहले ही की तो बात है। वह देवी है, अरुण, देवी! उसके लिये यह दुनिया नहीं। (अरुण कुछ बोलना चाहता है।) बस, जाओ, अरुण, जाओ। मैं आगे कुछ भी सुनना नहीं चाहती। नलू! जा बहन! तुम मेरे कमरे में जाओ। मैं कुछ देर यहाँ रहना चाहती हूँ। (नलिनी पहले करुणा की ओर फिर अरुण की ओर देखती है।)

[दोनोंका अन्दर प्रस्थान।]

करुणा—(लम्बी साँस लेकर भाल दबाती हुई) ओह! प्रताप! (लम्बी साँस लेकर) अगर तू ने पहले यह सब कुछ बता दिया होता तो

मैं प्रबोध से विवाह ही क्यों करती ? क्यों प्रेमा के जीवन को नष्ट करती मैं ? मेरे लिये प्रेमा ने अपना बलिदान किया। मैं हत्यारिन—हत्यारिन—(कोच के सहारे मुँह ढक लेती है।) (प्रेमा का प्रवेश)

प्रेमा—करुणा! [पास जाकर सिर पर हाथ फेरती हुई] करुणा! बहन! (करुणा प्रेमा की ओर देखती है।) बहन! (करुणा मुँह कोच के सहारे छिपा लेती है।) क्या प्रेमा से रूठ गई बहन ? बहन!

करुणा—(थोड़ा सिर उठाकर)बहन! क्या अब भी मुझे बहन कहती हो ? तुम देवी हो, प्रेमा।

प्रेमा—करुणा! क्या बक रही है ? (करुणा को उठाती है)

करुणा—बकती हूँ मैं ? हाँ! बकती हूँ। बहन! (हँसती है) मैं प्रेमा की बहन! बहन ने ही प्रेमा की हत्या की! बहन! [हँसती है] बहन! (जोरसे हँसती हैं)

प्रेमा—क्या तू पागल हो गई है ?

करुणा—पागल! हाँ, पागल है यह करुणा! याद कर! एक दिन तू भी तो पागलपन दिखा चुकी है! पागल! शायद पूछोगी— मुझे कुछ हो गया है ? नहीं, मुझे जो कुछ होगा—अब होगा। याद करो, प्रेमा—दो वर्ष पहले की बात! करुणा तेरी सखि! सखि हो तो क्या हुआ! प्रेमा, तू पगली है। प्रेमा पगली है। हाँ—हाँ—तू पगली है, प्रेमा! तू ने प्रबोध को करुणा के हवाले कर दिया। सखि के लिये इतना त्याग! अपने जीवन का त्याग!

प्रेमा—तुझे किसने कहा कि मैं प्रबोध से प्रेम करती हूँ ? नहीं—नहीं! यह झूठ है। बिलकुल झूठ है! मैं प्रबोध से प्रेम नहीं करती। प्रबोध मेरा कोई नहीं। कोई नहीं। प्रबोध करुणा को ही चाहता है।

करुणा ! करुणा ! सच मान । प्रबोध अब केवल तेरा ही है । तू ही उसका सर्वस्व है ।

करुणा—अब तो प्रबोध मेरा ही है, प्रेमा ! मेरा बनने के लिये उसने अपने से पूरे पौने दो वर्ष संघर्ष किया । तब कहीं जाकर—

प्रेमा—कैसी पगली है ! क्या प्रेम भी प्रयत्न से किया जाता है ? बहन ! तू धोखा खा रही है ! माने तो कहूँ ! दृष्टिपात् से ही जो प्रेमाभास होता है-वह अधूरा होता है । स्वार्थमय होता है । ऐसे प्रेम की सीमा विवाह तक ही सीमित रहती है । पर तेरा प्रेम सहवास से घुल गया है । उसका बल विवाह के बाद ढीला नहीं पड सकता ! सहवास से, जन्मा प्रेम जीवन-संगी होता है । वह धूप-छाँह में खिलने कुम्हलानेवाला नहीं हो सकता । करुणा ! प्रबोध को अब तुझ से कौन छीन सकता है ?

करुणा—मैं जानती हूँ कि अब प्रबोध मेरा है ।

प्रेमा—मैं कैसे मानूँ ? तुम घुलती जा रही हो । तुम्हारा यह हाल देखकर क्या वे सुखी हो सकते हैं ? कॉलेज के विद्यार्थी तक उनके हँसमुख चेहरे के लिये तरस रहे हैं । वे प्रबोध को अपने प्यारे प्रोफेसर को इतना गंभीर देखने के आदी नहीं हैं । करुणा, दया करो—इस गरीब प्रोफेसर पर ! ये हृदय के बडे कोमल हैं । तुम्हारी प्रसन्नता के अभाव में वे बहुत कुछ खोये से रहते हैं । तुम प्रबोध को सुखी न बनाओगी ?

करुणा—मै उन्हें सुखी देखना चाहती हूँ । और उन्हें सुखी बनाऊँगी भी । पर मेरा जीवन ! मेरा जीवन कभी शांतिमय न रह सकेगा । और रहे भी तो क्यों ? मेरा जीवन तुम्हारी बलिवेदी पर खडी की हुई समाधि मात्र है ।

प्रेमा—करुणा ! (सम्भलकर) यह सब सत्य से परे है । प्रबोध से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं । तू मुझपर विश्वास क्यों नहीं करती ?

करुणा—क्या कहती है ? मैं प्रेमा पर—साक्षात् देवी के प्रति अविश्वास करूँ ? यह कभी नहीं हो सकता । तुम ने प्रबोध का दान दिया। मुझे प्रसन्न रखने के लिये अपना हृदय भी मुझे दे दिया । तेरी वे सहयोगी घडियाँ—जो पल पल मुझे रिझाये रखती थीं—मैं कैसे भूल सकती हूँ ? तू ने मुझे अपना हृदय दिया है । भला हृदय से हृदय कैसे छिप सकता है ? हाँ—दबाया जा सकता है । फिर भी कब तक ? बोलो प्रेमा ! मेरे साथ तुम्हारा यह प्रेमभरा व्यवहार—क्या मेरे लिये ही खेला गया नाटक मात्र नहीं है ?

प्रेमा—(चौंक कर सम्भलती है) क्या कहा ? नहीं—नहीं, यह सब झूठ है । झूठ है । तुम्हें यह सब कुछ किसने कह दिया ? क्या प्रबोध ने—

करुणा—उन पर शंका करना बिलकुल गलत है ।

प्रेमा—हो सकता है । क्या प्रबोधबाबू अन्दर ही हैं ? मुझे आजही उनसे निपट लेना है । उन्हें करुणा के जीवन को नष्ट करने का कोअी अधिकार नहीं ।

करुणा—प्रेमा ! [बिना सुने ही प्रेमा का अन्दर प्रस्थान । करुणा देखती रह जाती है ।] करुणा ! तू ने बुरा किया ! मन क्यों खोल दिया पगली ? ओह ! [कोच पर पड जाती है ।] प्रबोध ! अभागे प्रबोध ! [मुँह छिपा लेती है ।]

[प्रबोध का प्रवेश ।]

प्रबोध—(एक अखबार पढते हुए—विचारमग्न । फिर सामने देखकर) तो मजदूरों ने हडताल रोक दी ! मेरे शब्दोंको मान दिया इन राष्ट्र-निर्माताओंने ! (जेबों को सम्भाल कर एक बन्द लिफाफा निकालकर

फोडते हुए) यह भी मजदूर संघ का ही मालूम होता है । [पत्र पढकर] ठीक है कि ये लोग मेरी सेवा चाहते हैं । मगर मैं क्या करू । मैं अपने से भी अलग न जाने किस किनारे की ओर बह रहा हूँ । करुणा ! (अन्दर की ओर बढता है । करुणा उसकी ओर देखती है । वह करुणा के पास जाता है ।) करुणा ! क्या बात है मेरे करुण ! [करुणा मुँह छिपा कर फूट पडती है ।] क्या बात है, करुण ! मुझे न बतलाओगी ? देखता हूँ-पाँच-छः महिनों से तुम दिन-दिन घुली जा रही हो । क्यों यों अपने को नष्ट करना चाहती हो ? कहाँ गया वह तुम्हारा फूल सा मुखडा ? मेरे जीवन ! क्यों छिपाये चाहती हो अपनी व्यथा ? क्या मैं इसके योग्य नहीं—

करुणा — [कातर दृष्टि से देखती हुई] प्रबोध ! [मुँह छिपा लेती है ।]

प्रबोध — जब मैं तुझ से दूर था तो तू मेरे पास बहा करती थी और अब मैं तेरे पास हूँ तो न जाने यह कौन सा हिमालय खडा हो गया है हमारे बीचमें । करुण ! मुख खोल । कुछ अपराध हो तो पहले डाल । मन का बोझ हलका कर ले । [करुणा ऊपर देखती है ।] बोल मेरी करुण ! [करुणा व्याकुल सी अन्दर निकल जाती है । प्रबोध विचार मग्न उसी ओर देखते ही रहते हैं । प्रेमा करुणा की ओर ध्यान न देती हुई सीधे प्रबोध की ओर बढती है । बाहर निकल जाना चाहती है । मगर जब प्रबोध उसे बुलाता भी नहीं—तो वह स्वयं ही वापस लौट आती है !]

प्रेमा—बोलते क्यों नहीं ? [सूखी हँसी से] ' मन पछतई है अवसर बीते ' । जीभ सी दी क्या किसी ने ? क्या सोच रहे हैं मूर्तिवत ? अब सोच रहे हैं ! समय पर क्या बुद्धि धरोहर रख आये थे ? बस, मैं सब कुछ समझ गई ! (जाने लगती है ।)

प्रबोध—प्रेमा !

प्रेमा—ओ! जबान खुल गई? किसे हाँक मार रहे है? प्रेमा तुम्हारी कौन? एक पराई लडकी को क्यों हाँक मारी जा रही है? क्या करुणा की तरह मुझे भी बरबाद करना है?

प्रबोध—प्रेमा! क्या कहती हो? करुणा को मैं ने बरबाद किया?

प्रेमा—बिलकुल जग की ही तरह पूछ रहे हैं आप!

प्रबोध--और उत्तर भी उसी तरह का सुन रहा हूँ।

प्रेमा—तो आपका कहना है मैं गलती पर हूँ?

प्रबोध—नहीं, मुझे ही अपनी गलती सुधारनी चाहिये।

प्रेमा—कदाचित् ऐसा हो सकता तो मैं कितनी सुखी होती। मेरी इच्छा थी कि प्रबोध एक महान हृदयी ही बना रहे। पर हर एक की इच्छा की पूर्ति भी तो क्यों हो? ओह! मेरे ही कारण बेचारी करुणा लुट गई।

प्रबोध—सच है, प्रेमा! मैं उसे हृदय देकर भी बचा न सका।

प्रेमा—क्यों कि आपने अपनी रकम के बदले उसके प्राण ब्याज-रूप में लिये हैं।

प्रबोध—सच मानो, प्रेमा, मैंने उसे अपने प्राण देने चाहे हैं, लेने नहीं।

प्रेमा—बस-बस रहने दो। अपनी दुर्बलता छिपाने से कोई लाभ नहीं। क्या मैं पूछ सकती हूँ—करुणा को कैसे मालूम हुआ कि प्रेमा तुम्हारी प्रेमिका है? क्या मैं ने उस पर दया की है? यह मेरा दान है? मैं ने तो चाहा था कि मेरा प्रबोध निर्दोष रहे। कहीं भी धब्बा न लगे हमारे प्रेम पर। अगर हमारा विवाह हो जाता तो जग कहता—प्रबोध ने

दिवालिया की बेटी समझ करुणा को—अुसके पवित्र प्रेम को ठुकरा दिया। हमने अपने प्रेम के लिये यह त्याग किया।

प्रबोध—प्रेमा, मत पलट वे पन्ने। बना रहने दे उसे केवल इतिहास ही।

प्रेमा—ऐसे इतिहास के पन्ने मैं चूर चूर कर डालूँगी। क्या त्याग की डींग हाँकने -उसका ढिंढोरा पीटने—हमने यह सब किया था? करुणा का हाथ इसीलिये पकडा था? उसका जीवन इतना सस्ता है? उसका गला क्यों घोटा जा रहा है? उसे क्यों तडपाया जा रहा है? प्रबोध! प्रबोध! अगर मैं जानती कि तुम इतने दुर्बल हो तो मै अपना स्वप्न क्यों सच्चा बनाना चाहती? उसे स्वप्नही क्यों नहीं रहने देती? (ठहर कर) कम से कम ब्याह के बाद तो मुझे यहाँ से भाग जाना था। अब तक मैंने शादी क्यों नहीं कर ली?

प्रबोध—क्या भयंकर विचार कर रही हो!

प्रेमा—सोचा रही हूँ—प्रबोध बडे त्यागी हैं। उन्होंने करुणा पर बडा उपकार किया है। तभी तो उसके साथ विवाह किया है न! प्रेमा! हाँ, आप ही ने तो प्रेमा के लिये अपने उमडते हुये हृदय को दबाया है। वाह दिनबन्धु! पूछते हुए हृदय तो नहीं उछल पडा न?

प्रबोध—जब से करुणा की यह दशा है—हृदय तो उछल कर गिर पडा है। उसके टुकड टुकडे भी हो चुके हैं। प्रेमा! आँखों के रहते मैं अन्धा हो गया था। मुझे अपने पर विश्वास था। सोचता था—मैं करुणा को कुछ नहीं बता रहा हूँ। पर अब मालूम हुआ—मैं भूल रहा हूँ। शायद मेरे मूक हृदय की भाषा वह ताड गई। सच प्रेमा, पहले मेरा मन तेरी ही ओर लगा रहता था। करुणा मेरी ओर तेजी से बढ रही थी। मैं भी

उसके प्रेम–प्रवाह में बह गया। न जाने कब कैसे उसने—पर हो न हो–मेरा ही दोष हो सकता है ? मेरे बर्ताव में ही उसे कुछ अभाव लगा हो। तभी आजकल वह उदास रहती है। आज मुझे मालूम हुआ कि मेरी करुणा उदास क्यों रहती है ? प्रेमा ! सचमुच मैं ही दोषी हूँ। उसके उस फूल से मुखडे के लिये मैं ही लू बना—

प्रेमा—तुम ! तुमने उसे कुछ भी नहीं कहा ? सच ! तुम कितने अच्छे हो, प्रबोध ! बडे अच्छे हो तुम ! उसे केवल भ्रम हुआ है। यह उसकी शंका का परिणाम है। मैं अभी जाकर उसकी इस कल्पित शंका को हवा कर दूँगी। मेरे अच्छे प्रबोध ! [आशा भरी अन्दर प्रस्थान करती है।]

प्रबोध—महान है, देवी तू ! भारतीय—

[प्रताप का प्रवेश]

प्रताप—भारतीय आत्मा सचमुच तू महान् है। लोग कहते हैं–अपने गाँव का मूर्ख भी बाहर का विद्वान। पर प्रताप इस बात को नहीं मानता। मैं क्या हमारे यहाँ का मजदूर और किसान भी खूब समझता है। क्या आप के कहने से हडताल नहीं रुकी ? वाह ! विचार भी कितने ऊँचे ! ' भारत को पहले खूब कमाना है और फिर योग्य बटवारा करना है। इसलिये हडताल से मजदूरों और मालिकों दोनों की ही हानि है।' देश की आर्थिक स्थिति पर जो प्रभाव पडता है उसका क्या वर्णन करूँ! कुछ भी हो, आपने मजदूरों के दिल जीत लिये। महान पुरुष कहीं का भी क्यों न हो–पूजने योग्य है। प्रोफेसर महाशय ! मैं ने कितनी बार प्रार्थना की—आप मेरे समाचार-पत्र को अपना ही समझें। मेरा प्रकाशन विभाग आप के चरण रज की प्रतिक्षामें है। पर मेरी विनंती आप तक क्यों पहुँचने लगी ?

महाशय ! आज मुझे साफ साफ कहना पडेगा ! क्या महान् पुरुष अपनी महानता न दे कर संसार के साथ अन्याय नहीं करते ? क्या श्रेष्ठ हृदय का स्वामी सम्पूर्ण राष्ट्र नहीं है ? आप को उसे यों मसोस कर रखने का क्या अधिकार है ? संसार आपसे बहुत कुछ चाहता है । आप की उसे आवश्यकता है । आवश्यकता है । आप उस से दूर कहाँ तक भाग सकेंगे ? मैं कहता हूँ, आप नहीं भाग सकते । प्रबोध, मैं क्या बताऊँ ? मैं —मुझे बडा दुख है—मैं आप का हृदय नहीं जीत सका । जीता नहीं तो हारा ही सही । अब हारे हुये पर दया कर के आप यह कार्य सम्भालें ।

प्रबोध—आप के अनुग्रह के लिये धन्यवाद । पर आजकल मैं कुछ अपने ही से अलग हूँ । न जाने कहाँ हूँ । अच्छा, नमस्ते । फिर कभी ।

प्रताप—सचमुच ! मैं भी पूछने ही वाला था कि आज कल आपको हो क्या गया है ? पर कदाचित् आप को अच्छा न लगे इसी डर से—

प्रबोध—यह कोई बात नहीं ।

प्रताप—हाँ वैसे उम्र के हिसाब से तो कुछ अधिक अन्तर नहीं है । परन्तु—विद्वत्ता—[कुछ रुखी हँसी] प्रबोध बाबू ! कहेंगे—छोटा मुँह बडी बात ! पर पूछे बिना रहा भी तो नहीं जाता । आज कल आप कुछ अनमने से रहा करते हैं । क्या कुछ कारण—वारण जान सकता हूँ ?

प्रबोध—यह दुनिया है । दो दिन के खेल ! कभी चाँदनी, तो कभी अँधेरी ! जाने दो ।

प्रताप—छिपाया चाहते हैं न ? पर यह कैसे हो सकता है ? प्रताप से यह दुनिया छिपी थोडे ही रह सकती है । मैं ने तो कल ही नलिनी के पिताजी श्री मोतीरामजी से कहा था—प्रबोध और करुणा का जीवन अब सुखी नहीं हैं । वैसे तो करुणा—हाँ यही तो बात है कि आज कल वह

खिला फूल तो रही नहीं, जो हवा से अटखेलियाँ करती रहे। वह मुरझाई हुई है। उसे तो अब झड ही जाना चाहिये। भला प्रेम का इस से कैसा सम्बन्ध? यहाँ तो छत्तीस का अंक है। क्या कोई गले-सडे कमल को गले से लगाये फिरेगा? मैं सोचता हूँ—एक और भी कारण है। वह वसन्त की बहार! मस्त त्रिविध मन्द मन्द पवन! वह इटलाती चंचल तितली—टेढी भौहोंवाली—नलिनी—

प्रबोध—प्रताप!

प्रताप—(हँसकर) भँवरा चौंक पडा? कितना अचूक निशाना लगा! [व्यंग से] नलिनी के यौवन पर दाँत रखने वाला प्रेमा से खेल थोडे ही रहा है? [उत्तेजित हो कर] करुणा के जीवन को नष्ट करने का कारण नलिनी नहीं? प्रेमा तो आप की है ही। एक ओर करुणा को चूस लिया त्याग के नाम और अब दूसरी तरफ नलिनी को चूसना चाहते हो लाड के नाम पर। वाह! खूब खेल खेला जा रहा है?

प्रबोध—[गंभीरतासे] प्रताप! क्या आप इसीलिये यहाँ पधारे हैं?

प्रताप—आप को बुरा लगा है। परन्तु बन्दा लाचार है। प्रबोध! आप दुनिया की आँखोंमें धूल झोंक सकते है—प्रताप की आँखोंमें नहीं। आप करुणा से प्रेम करें या न करें, प्रेमा को छाती से लगाये डोला करें। मुझे इससे कोई प्रयोजन नहीं। पर खबरदार! जो नलिनी की ओर आँख भी उटाई।

प्रबोध—महाशय, अच्छा हो—आप यहाँ से पधार जायें। आप के लिये मुझे इतना ही कहना है कि आप अपने आप ही भूल भुलैया में फँसे जा रहे हैं।

प्रताप—प्रताप जासूसी उपन्यास का पात्र नहीं है। प्रताप को धोखा दिखा रहे हैं? प्रोफेसर साहब! यह कॉलेज में 'लेक्चर' चल रहा है क्या? [हँसता है।]

[मोतीराम का प्रवेश। प्रबोध विचारमग्न एक ओर हो जाता है।]

मोतीराम—हँसते क्या हो, प्रताप? मैं धोखा नहीं खा रहा हूँ। तुम ने ही यह सब कुछ प्रकाशित किया है।

प्रताप—हो सकता है। किन्तु समाचार-पत्रोंमें झूठी ही बातें थोडी छपती है! मोतीराम जी, मुझे दुख है कि आप को इस बुढापे में यह सब कुछ सहन करना पड रहा है। परन्तु विवश हूँ! जिस देश के अखबार देश, समाज या व्यक्ति को समय पर सचेत न करें—वह देश उन्नति नहीं कर सकता। आप के दुख से जग जागता हो तो हमें वही करना पडता है। इससे संसार आप की ओर सहानुभूति से ही देखेगा। फिर मेरा भी तो कुछ कर्तव्य है! समाज के आगे व्यक्ति—फिर चाहे वह कितना ही श्रेष्ठ क्यों न हो—न्यून ही है। क्षमा करें। आप की आँखें आज की दुनिया को नहीं पहचान सकतीं। [प्रबोध विचारमग्न बैठ जाते हैं।]

मोतीराम—मैं चाहे दुनिया को न पहचान सका हूँ। मगर अपनी नत्थू को तो अच्छी तरह समझ सकता हूँ।

प्रताप—(हँसकर) वाह, क्या खूब कहा अपने! अजी जनाब! यदि बाप अपनी लडकी को पहचान लें तो फिर बाकी रह ही क्या जाता है?

मोतीराम—मुझे अपनी लडकी पर विश्वास है।

प्रताप—कदाचित् पूर्ण विश्वास होगा। [हँसकर] लो, और सुनो। लडकी पर—वह भी युवती पर—आप को पूर्ण—सम्पूर्ण विश्वास है। आप हैं

कौनसी दुनिया में ? क्या आप को मालूम हैं—तरुणियाँ पिता की दृष्टि से परे क्या क्या सितम ढाया करती हैं ? आप बुड्ढे हो चुके हैं, महाशय। जवानों की बातें कैसे समझ सकते हैं ? मगर क्या कुछ याद भी नहीं कर सकते ? [हँस कर] याद क्या करेंगे--आप के यौवन में तो यह रिवाज ही ही चालू न था। आप का जमाना इतना जल्दी पुराना पड गया। अब तो जनाब—बाप क्या खुद पति देवता देखते रहते हैं—और श्रीमतीजी किसी मन चाहे के बगल में जा पडती हैं।

मोतीराम—प्रताप तुम एक लडकी के दुखी बाप के सामने बोल रहे हो। इतना रसिकपन न दिखाओ तो ही अच्छा है। तुम्हारी ये बातें भारतीय संस्कृति—

प्रताप—जरा यह संस्कृति प्रोफेसर साहब को समझाइयेगा।

प्रबोध—प्रताप !

मोतीराम—पहले मेरे प्रश्न का उत्तर दो, प्रताप ! (प्रताप हँसता है) मैं तुम्हारे घर हो आया हूँ। तुम कहते हो, अखबार समाज की भलाई के लिये हैं। तो फिर पिता से पूछे बिना पुत्री पर आक्षेप छापना कहाँ तक न्याय युक्त है ? नलिनी मेरी पुत्री है, प्रताप !

प्रताप—(मुस्करा कर) माना कि नलिनी आप की बेटी है। और आप उसके पिता हैं। पर आप की बेटी दुनिया के लिये और भी बहुत कुछ है—यह आप को नहीं भूलना चाहिये ! समझे ?

प्रबोध—आखिर कहाँ क्या छपा है ? देखें भी ! [मोतीराम अखबार देता है। प्रबोध पढने लगता है कि प्रताप छीन कर फाड डालता है। प्रबोध क्रोध दबाता है।] प्रताप !

प्रताप—अजी, इसे पढने से क्या बनता-बिगडता है। जरा अपने हृदय का अध्ययन कीजियेगा। (अरुण का मुस्कराते हुये प्रवेश)

अरुण—ओहो! धन्य! धन्य! क्या सुन्दर उपदेश चल रहा है! हृदय का अध्ययन! क्या खूब प्रकाशन किया है आपने! सचमुच प्रताप, आप का नाम उपदेशकों में अब तो कम से कम लिखा जा सकता है। खास उपदेशक के त्यौरे में दिखाई दे रहे हो।

प्रताप—नहीं, उपदेश देने का तो ठेका आप लोगों ने ही ले रखा है न?

अरुण—ठेकेदार पैसेवाला ही हो सकता है। अरे भाई! यह तो रही उपदेश की व्यासपीठ। अिसकी तो बात ही क्या? आप तो ऐसी पचासों बातें खरीद सकते हैं न? कुछ लेख--वेख लिखवा मारा है या नहीं अपने नाम पर?

प्रताप—यह रही हमारी इच्छा की बात। एक क्यों सैंकडों लिखवा लें।

अरुण—पर आप को समय जो नहीं मिलता। फिर कागज की कमी! अपनी दिनचर्या के सिवा अगर कहीं जगह मिलती तो रातचर्या क्यों नहीं छपवाते? क्या करें, विवश हैं। कहिये महाशय! रातभर भटकने के बाद जैसे तैसे दो बजे तो घर पहुँच ही जाते होंगे?

प्रताप—(होठ चबाता है।) जब सिर पर काम का बोझा पडता है तो नींद कहाँ? तुम्हें क्या? बाप तो बेचारा जमीन खोदता दिन रात खेत में पडा रहता है। और माँ रोटियाँ पहुँचाते पहुँचाते दम भरती है। इधर तुम रंग रेलियाँ करते फिरते हो। जरा तो विचार करना था!

अरुण—उपदेश में पटुता आने लग गई है! किन्तु यह क्या? आपका चेहरा उतर क्यों गया? कदाचित्—कामी आदमी हैं। इसी से फीका पड गया है। कहीं बीमार माताजी ने दो चार खरी खोटी तो न सुना दी! अरे भाई! बेचारी बुढिया को कम से कम एक आध बार तो दर्शन दे दिया करो। पति के मर जाने के बाद गरीब ने कब सुख पाया है! उसके तुम बेटे हो। जरा देख आया करो। ये लडकियाँ तो बाद में भी खरीदी जा सकती हैं। पैसा जो है हाथ में। पर बेचारी माँ कितने दिन की? जाओ, हो आओ न!

प्रताप—खबरदार जो दूसरों के घर की बात बनाअी।

अरुण—किसी की बात बनाना बुरा नहीं, बिगाडना बुरा है।

प्रबोध—अरुण! क्यों बात बढा रहे हो?

प्रताप—आज तक मैं ने आप से कुछ नहीं कहा है। मगर याद रखें—मेरे घरेलू मामलों में दखल मैं सह न सकूँगा।

अरुण—आप तो किसी के घरेलू मामलों की ओर नहीं बढते हैं न? [मोतीराम जी की ओर संकेत] इन के घर में, प्रबोध के घर में, मेरे घरमें, चिनगारियाँ उडाते आप को कभी शर्म आई है?

प्रताप—आप मुझ पर अनुचित आक्षेप लगा रहे हैं। हाँ, मैं ने मोतीराम जी के घरेलू मामलों में कुछ अपनी राय अवश्य प्रकट की है, क्यों कि मैं उनके घर को अपना घर ही समझता हूँ। मैं ने अपनों पर अधिकार चलाया है। अन्य चाहे मरे या जीयें।

मोतीराम—(पास आकर) सचमुच, प्रताप! क्या तुम मुझे अपना ही समझते हो?

अरुण—तो आप को प्रताप पर विश्वास नहीं था क्या? काम पड़ने पर ही तो भेद खुलता है।

मोतीराम—चुप रहो अरुण! प्रताप, मुझे तुम से ऐसी ही आशा थी। मैं सचमुच तुम्हारा सहयोग चाहता हूँ। अरुण! मुझे कुछ कहना है तुम से।

अरुण—यहीं कह सुनाइगा न! सब ही सुन लें।

मोतीराम—अब तुम्हें नलिनी के साथ यों नहीं रहना चाहिये।

अरुण—यों! मैं नहीं समझा!

मोतीराम—मुझे समझाने के लिये समय नहीं है। मैं चाहता हूँ कि नलिनी के साथ तुम्हारा यह खेल बन्द हो जाना चाहिये।

अरुण—वह तो खेलने 'लेडीज क्लब' में जाती है। मैं वहाँ कैसे जा—

प्रताप—मोतीराम जी नलिनी के पिता हैं। उन्हें यह मजाक बुरा लग सकता है। समझे, महाशय?

मोतीराम—अरुण, मैं चाहता हूँ—तुम यहाँ न आया करो।

प्रताप—तो फिर आप रहेंगे कहाँ? यही तो वह धर्मशाला है जहाँ—

प्रबोध—प्रताप, जबान खूब चल रही है।

प्रताप—ओह! आप को बुरा लगा। अच्छी बात है—आगे से बन्द।

अरुण—मगर पीछे से सब कुछ चलने दीजियेगा।

मोतीराम—अरुण ! कुछ भी हो। आज से आगे मैं नलिनी को तुम्हारे साथ न देखूँ।

अरुण—मैं ने कब कहा है कि आप देखें।

प्रताप—बस, मजाक बन्द करो। नलिनी तुम्हारे साथ न रहे।

अरुण—मैं तो नहीं कहता कि वह मेरे साथ रहे। मेरा तो यह कोई हठ भी नहीं—

प्रताप—तो वह फिरती है आप के पीछे पीछे ? मैं अच्छी तरह से समझता हूँ।

प्रबोध—अरुण, अच्छा तो यही है कि प्रताप से अब अधिक चर्चा न हो।

प्रताप—वरना सारा पडदा उठ जायेगा। भंडा फोड होने से डरते है ?

प्रबोध—अगर आप कुछ कहना चाहते हैं तो साफ साफ कह दें। प्रताप, साफ साफ बता देने से मामला सुलझाने में काटेनाइयाँ कम हो जाया करती हैं।

प्रताप—साफ साफ सुनना चाहते हैं तों फिर सुन लें। नलिनी के पिताजी अपनी पुत्री के हित के लिये चाहते हैं कि अरुण उससे मिलना-जुलना बंद कर दे।

अरुण—देखिये साहब ! नलिनी और अरुण का निवास-स्थान एक मकान में है। पर कमरे दो हैं। इसलिये आप की आज्ञा पालन करने में विशेष कठिनाइयाँ पेश न आयेंगी। हाँ, आप को जरा इधर उधर के प्रयत्न जरुर चालू रखने ही पडेंगे।

प्रताप—मैं आप से नहीं बोल रहा हूँ। और सुनिये—प्रोफेसर साहब, आप को इसके साथ और एक बात करनी होगी। मुझे कहना ही पडता है कि नलिनी पर आप की दृष्टि भी साफ नहीं है।

अरुण—[क्रोध से] प्रताप!

मोतीराम—[क्रोध से] प्रताप! (प्रताप हँसता है। करुणा की चीख सुनाई देती है। सब चौंकते हैं। अन्दर जाने को बढते हैं। नलिनी का प्रवेश।)

नलिनी—दीदी बातों ही बातों में बेसुध हो गिर पडी है। वह न जाने कैसे कैसे कर—जल्दी वैद्यराज को बुला—

अरुण—आप चलिये अन्दर! मैं आया ही समझें वैद्यराज को लेकर। [सब अन्दर जाते हैं। प्रताप खडा रहता है। नलिनी अरुण की ओर बढती है। मगर उसे गया देख वापस लौट कर अन्दर जाने लगती है कि प्रताप उसका हाथ पकड लेता है। वह उसको थप्पड मार देती है।)

नलिनी—नीच!

प्रताप—(गाल मलता है। नलिनी निकल जाती है।) यह हिम्मत! अच्छा, देख लूँगा। [गुस्सेमें निकल जाता है।]

[यवनिका पतन]

———

करुणा

★ ★ ★

अंक दूसरा

स्थान—नलिनी का कमरा।

समय—करीब चार बजे।

[नलिनी आनन्दसे उछलती कूदती गुनगुनाती आती है इधर उधर की चीजों को ठीक-टाक करके रखती हुई बीच बीचमें कुछ याद सी करती है। फिर कोच पर पड जाती है। पडी पडी वेणी का छोर गूँथती है। वहीं पर बैठी दर्पण मे मुखडा निरखने का प्रयत्न करती है। पर देख नहीं सकती। वेणी छोड घडी पर दृष्टि डालती है। एकदम खडी होती है।]

नलिनी—अरे! ४ बज गये! सुबह दस का कहा और पधारी सवारी ११ बजे। अब ४ बजे आने वाले थे। देखें कब, बजते हैं उनके चार? (एक मासिक उठाकर पढने बैठती है।) कदाचित प्रोफेसर महाशय के साथ मजदूरों की सभा में तो न चले गये? [घडी की ओर देख कर] अरे! अभी तीन ही मिनिट हुये हैं चार बज कर? कितनी धीमी चलती है यह घडी। (पौने पाँच पर सुई कर देती है।) हाँ, अब ठीक है। पौने पाँच बजने चाहिये अब। अब भी अरुण नहीं आया? [छः पर सुई कर देती है।] हाँ, अब छः बज जाने चाहिये। फिर भी आने का नाम तक नहीं। इस अरुण की देर से आने की आदत को ठिकाने लगाना

होगा। [कुछ सोच कर मुस्कराती है। एक पत्र लिख कर पढ़ती है कि अरुण बाहर से खखारता है।) ओह! सवारी पधार रही है? (जल्दी से पत्र मेज पर रख कर अन्दर के दरवाजे के पीछे छिप जाती है।)

अरुण—(नेपथ्य से) मैं ने कहा—अरुण है। क्या अन्दर आ सकता है? (आगे बढ़ते हुए) अन्दर नहीं—क्या पास आ सकता है? [चारों ओर देख कर] अरे! नहीं है? (थका हुआ सा कोच पर पड़ जाता है।) कॉलेज में आज 'डिबेट' क्या हुई बस खिचड़ी बन गई। अच्छा ही हुआ जो नलिनी न आई। नलिनी! अरी, कहाँ छुपी है? [पत्र पर दृष्टि पड़ती है। पड़ा पड़ा ही पढ़ने का प्रयत्न करता है।] श्री—अरुणा। हूँ! यह अरुणा कौन? (पत्र के पास जाकर) श्री अरुणा! (हँस कर) तो मेरे लिये यह पत्र लिख गई है कहीं सवारी? जाओ, हम नहीं पढ़ते ऐसा पत्र। [कोच पर पड़ जाता है।] अरुणा! यह खूब है। मुझ जैसे पुरुष को स्त्री वाचक नाम दे दिया गया! राम को रामा कहने की फैशन से राम पुरुष ही रहता है। पर महाशया! अरुण को अरुणा कहने से बेचारे अरुण को धोती से साड़ी बदलनी पड़ती है! [पत्र निकाल कर पढ़ता है।]

प्रिय अरुण,

जमाना लड़कियों का है। पर तुम्हें इसकी चिन्ता! खैर, मैं ने समय पर आने वाले साथी को चुनने का निश्चय कर लिया है। अब से मैं उसीके साथ खेलने-पढ़ने-हँसने-उसी तरह जाऊँगी—जिस तरह तुम्हारे साथ जाती थी। तुम्हें दुख हो या न हो पर तुमतो आदत से लाचार हो। कभी समय पर सवारी पधारी? फिर मैं—

तुम्हारी,

अच्छी नलू

अच्छी नल्ल ! ऊँह ! बडी आई है अच्छी बननेवाली ! लोगों को ठगना चाहती है । अच्छी बात है हम भी क्या कोरी मिट्टी के बने थोडे ही हैं ! (कुछ विचार करके मुस्कराता है ।) अच्छी बात है । देख लूँगा इस नटखट को ।

नलिनी—(आती-आती) देख लोगे । क्या देख लोगे ? किसे देख लोगे ? क्यों देख लोगे ? आप को क्या मैं किसी को चुनूँ । आप देखनेवाले कौन ? याद रखें जो मेरे साथी पर ऐसी–वैसी दृष्टि भी उठाई । समझे ! मेरी माँने बिलोना नहीं डाला था अपने दूध का । भर पेट पिलाया है मुझे । बोली बन्द हो गई ! मुँह सी दिया है किसीने ? बोलो, जवाब दो ।

अरुण—नादानों से बोलना मैं नहीं चाहता । जाओ, अपना काम करो ।

नलिनी—हम नहीं करतीं अपना काम ! आगे आप का क्या कहना है ?

अरुण—वाह ! तिरिया चरित ! ऊँह ! जाओ, हट जाओ मेरे सामने से । किसी ने सच ही कहा है—'नारी तेरा भेद न पाया, कौन करे विश्वास ?'

नलिनी—वाह रे पुरुष ! क्या खूब है गाया, तेरा धरा रहे विश्वास ! क्यों,आप पर तो कोई विश्वास कर ही लें न ? क्यों नहीं ! पुरुष तो विश्वास के योग्य ही होता है । घर से निकला कि बस—न रास्ता देखता है—न योग्य–अयोग्य स्थान देखता है—जहाँ कहीं से—औरतों पर आँखें फाडे रहनाही तो पुरुष का जन्म सिद्ध अधिकार ही है । शर्मका तो ऐसे कार्य में नामोंनिशान तक नहीं रहता । ऊँह ! एक नम्बर के बनावटी बहरूपिये ! दूसरों का तो क्या कहें—अपने जीवन में पुरुष कभी खुद पर तो विश्वास

करता है क्या? कितना उज्वल है आप पुरुषों का चरित्र! बड़े आये हैं तिरिया–चरित पर छींटे उडानेवाले! बोलो न? बखान बन्द क्यों पड गया? वह कैंची की तरह चलनेवाली जबान पर किसने लगाम डाल दी?

अरुण—जवाब से पहले इन तीर से नैनों को ताला ठोकना आवश्यक है।

नलिनी—अगर पुरुषों का बल चलता तो वे नारी के अंग–प्रत्यंग पर ताला ठोकने में कमी न करते। पर वे जमाने लद गये। भूल जाइयेगा वे सब कुछ। अच्छा हो अगर नारी के बजाय अपने ऊटपटाँग बोलों पर कुछ वजन रख दें, जिससे छोटे से झोंकों में तो कागज की तरह उड न सकें।

अरुण—ऊटपटाँग बोलने से भी ऊटपटाँग करना अधिक भयंकर हुआ करता है। जरा अपने इन गुलाबी होटों को विश्राम तो लेने दो। मैं तुम्हें अच्छी तरह पहचानता हूँ। यहाँ फँसनेवाला कोई नहीं है।

नलिनी—यह आक्षेप अन्याय पूर्ण है। हम किसी को क्यों फँसायें? यहाँ ऐसी आदत नहीं है। हाँ, यह मात्र हम साफ साफ कहे देती हैं—स्त्री पुरुष की साथिन बन कर रह सकती है, गुडिया बन कर नहीं।

अरुण—बडा उपकार हुआ आप का कि आप साफ साफ भी कुछ कह सकती हैं। मैं यथा समय सचेत हो गया। चलो, इतने में ही छूट गया। ठीक ही तो किया है आप ने। धन के मजे! मोटर! बंगले! नौकर-चाकर! सैर सपाटे! यह सब अरुण के पास कहाँ? पर प्रताप के साथी बनने से खूब मिल सकते हैं। फिर भला प्रताप को आप क्यों न चुनें?

नलिनी—चुप रहो। क्या बिल्ली लाँघकर आये हो? अरुण! [गला भर आता है।]

अरुण—बस बस, रहने दो। दो पेट की होडी बनना तुम्हें खूब-खूब याद है। क्या बता सकती हो कुछ कारण —आज ही सुबह कहा था न—तुम मुझसे प्रेम नहीं करती। क्या मोतीरामजी प्रताप के घर आज दो चार बार यों ही गये थे। प्रताप मोतीरामजी के घर को अपना ही घर जो समझता है। यह एक दूसरे के प्रति अपनापन दिखाना क्या केवल खेल मात्र ही है? मैं सब कुछ समझ रहा हूँ और जान भी सकता हूँ कि ऊँट किस करवट बैठनेवाला है।

नलिनी—अरुण यह क्या बक रहे हो? गलत—

अरुण—गलत! हाँ, आज तक गलत समझ रहा था। पर अब ऐसी भूल न करूँगा। बुरा लगा आप को? विवाह के पहले लगनेवाला यह 'बुरा' बडा मीठा-बुरा होता है।

नलिनी—अरुण? (रोनी सी होती है।)

अरुण—रोना चाहती हो? ठीक ही तो कर रही हो। अबला का रोना तो कम से कम बड़ा सबला होता है।

नलिनी—क्या बक रहे हो बेभान होकर?

अरुण—ब्याह के बाद की मजे की बात! जब चाँदी की चमचमाहट पर तुम्हारी सौभाग-रात थिरकेगी! कितनी प्रसन्न होगी तब तुम! मोडर में से तुम्हारा सौंदर्य बिखरता हुआ जायेगा। लूट मच जायेगी उस बिखरे सौंदर्य की। उस समय, हाँ, उसी समय—बेचारा अरुण, यह अरुण, दीपक के सहारे—ढूँढने पर जितना मिलेगा उतनी ही लूट पर अपने भाग्य को कोसता हुआ—संतोष का ढोंग रचने का प्रयत्न करेगा।

नलिनी—[व्याकुल सी होकर] तुम चुप होते हो या नहीं?

अरुण—कोई बात नहीं नलिनी ! तुम सुखी रहो—यही मेरी इच्छा है। [जाने लगते समय] कभी कभी तो याद कर लिया करना। पर [मुड़कर] पर नहीं। नलू, मुझे याद करके अपने सुख में काली छाया को छूने न देना। वरना यह अपने पर अन्याय होगा। [नलिनी कोच पर पड़ जाती है। मुँह छिपा लेती है]

अरुण—पुरानी बातों को भूल जाना ही ठीक होता है, नलिनी ! अब उन्हें याद करने से तुम्हें दुख ही होगा। (नलिनी सिसकने लगती है) नलिनी ! (पास जाकर) नलू ! रोती हो ? (पीठपर हाथ रख कर) नलू ! (नलिनी जोर से सिसकने लगती है। अरुण की ओर देखकर फिर मुँह छिपा लेती है। सिसकती है।) क्षमा कर, नलू मुझे ! मुझे मालूम न था कि मैं नाटक के पात्र की तरह भावावेश में इतना बह चलूँगा ! नलू ! मैं तो केवल—नलू, अब अधिक न रो। सच कहता हूँ—मैं तो मजाक कर रहा था। हँसी के लिये था यह सब।

नलिनी—हँसी—मजाक ?

अरुण—हाँ नलू ! मैं ने सोचा—तुम यह पत्र लिख कर मुझे फँसा रही हो ! तुम्हें फँसाने—मैं ने यह नाटक रच डाला। मुझे मालूम न था कि मैं इधर इतना दूर बह निकलूँगा। मुझे क्षमा कर, नलू !

नलिनी—सचमुच, यह नाटक ही था ? मुझ पर अविश्वास नहीं था न ?

अरुण—हाँ, मैंने किया तो नाटक ही था पर—

नलिनी—पर बड़ा निष्ठुर नाटक ! है न ? पर कोई बात नहीं। हमें पुरुषों का यों तंग करना ही भाता है।

अरुण—प्रबोध भैय्या का कहना है कि साफ साफ बता देने से मन हलका और सुखी होता है। नलू! सच तो यह है कि प्रताप के बार बार भडकाने पर मेरे मन में कुछ न कुछ शंका-कुशंका अवश्य घुसी होगी। तभी तो इस नाटक के सहारे मैं इतना बढ सका। मुझे क्षमा करो। मैंने तुम्हारे प्रति अन्याय किया है। मैं यों स्वप्न में भी नहीं चाहता था—

नलिनी—बस बस रहने दो। पहले नाटक से मुझे रुला दिया और अब अपने को रुलाना चाहते हो? सच अरुण, यह बडी मीठी मजाक रही।

अरुण—और यह भी अच्छा हुआ कि इस नाटक के सहारे मैं खुल पडा।

नलिनी—और अब बिलकुल शुद्ध हो गये।

अरुण—हाँ, मेरा मन बिलकुल हल्का है। तुम्हें तो व्यर्थ में रुला दिया न! नलू! आज मालूम हुआ—मनुष्य के हृदय में कुछ न कुछ ऐसे छिपे भाव घर किये रहते हैं जिनका पता उसे नहीं रहता। पर यथा समय वे अपने आपही प्रकट हो जाते हैं।

नलिनी—ऐसे भावोंके निकल जाने के बाद अपना और भी अधिक अपना बन जाता है। यह कमजोरी इतनी हानिप्रद नहीं है।

अरुण—पर जग इस दुर्बलता से अपना नया जग निर्माण करवा सकता है जो कि अपनेपन के लिये सदैव घातक ही सिद्ध हुआ है। ठीक भी है। निर्माण किसी की समाधि पर ही तो हुआ करता है न!

नलिनी—तो तुम्हारी कुशंकाओंकी समाधि पर ही यह निर्माण समझ लो। इस निर्माण की स्फूर्ति है यह नलू! धन्यवाद इसे मिलना चाहिये। वाह रे मेरे जाली पत्र! अगर पत्र लिख कर—इस दरवाजे के

पीछे छिप कर मैं ने इस नाटक का पहला पर्दा नहीं उठाया होता, तो यह दूसरा अंक कैसे तैयार किया जाता। कुछ भी हो—दूसरा अंक बडी सावधानी से खेला गया है।

अरुण—और जीत हुई—

नलिनी—कभी तुम्हारी, तो कभी हमारी! आज हमें भी एक पाठ सीखना पडा है। मन की पीडा बडी बुरी होती है।

अरुण—चलो, यही अच्छा हुआ। अब तो कम से कम हमारा मन न दुखाना।

नलिनी—चलो, हटो! तुम बडे निष्ठुर हो। हमें बहुत तंग किया करते हो।

अरुण—अगर आप हमें ढीला छोड कर यह ताना कसतीं तो कदाचित—[नलिनी कुछ लजाती है। मुस्कराता हुआ अरुण दर्पण को नलिनी के सामने रखकर टकटकी लगाये उसकी ओर देखता रहता है] जरा देखो न—कितनी सुन्दर लगती है—हमारी नल्लू!

नलिनी—[दर्पण अरुण की ओर कर के] ऊँ! ऊँ! [अरुण दाढी पर हाथ फेर कर मुस्कराता है] वचन के बडे धनी हो जी! सुबह दस का कह गये और पधारे ११ बजे। अब तो चलना है न रतन के यहाँ?

अरुण—अवश्य चलना है। चलना क्यों नहीं? पर सुबह भाभी को ऐसी दशा में छोड कर कैसे जाते?

नलिनी—अब तो बिलकुल ठीक है। दीदी कुछ गुनगुनाती कसीदा काढते बैठी है अन्दर। उसी ने तो कहा है न मुझे—रतन के यहाँ अब

हो आओ। पर आपका कुछ ठिकाना हो जब न! मैं तो कब से तैयार बैठी हूँ।

अरुण—मैं भी कब कहता हूँ कि मैं तैयार नहीं। हाँ—कॉलेज में आज 'डिबेट, थी न? चला गया था जरा वहाँ। अच्छा ही हुआ जो तुम न आई। सब छाछ-दूध एक हो गया था। मैं तो उकता कर उठ आया हूँ।

नलिनी—वरना अब भी सवारी नहीं पधारती। अच्छा, तो हो लो तैयार! समय का मान रखना सीखना बाकी है।

अरुण—तो लो, अभी आया भाभी से मिलकर। मेरी नटखट नलू, तैयार रहना री। [अरुण जाता है। नलिनी आनंद से घेरी मारती है, गुनगुनाती है और गाती है।]

गायन

सरोवर की, कुमोदिनी!
बागों की, ए कोकिले!
घन गरजे री, काले काले,
नाचे मोर, खिले खिले।
तू नैना, तू बैना!
नाचूँ मैं बन, मस्तानी।

[आनंदित होकर चक्कर मारती है।]

(प्रेमा का प्रवेश)

प्रेमा—क्यों री, आज तो रविवार है न? फिर भी अकेली गा रही है?

नलिनी— दो कली कहाँ से ? जरा तुम—

प्रेमा—नहीं—नहीं—मैं तेरे जोड की कली नहीं। अरुण कहाँ उड गया री ? भँवरे कली को अकेली छोडते जरा भी नहीं सोचते। पगली है री तू ! पक्का शिकारी, फँसे हुए शिकार को जाल से निकल जाने थोडे ही देता है।

नलिनी—गांधी-युग में शिकारी की उपमा कुछ कम जँचती है।

प्रेमा—हाँ, कहती तो युग की ही बात हो। पर क्या करूँ ? हमारी नलू को उनका 'प्रेम' शब्द खटका जो करता है। नलू, करुणा क्या कर रही है ? ठीक है न ? क्या मेरे बारे में कुछ पूछ रही थी ? अब तो उसका मन शान्त है न ? क्या प्रबोध उसी के साथ है ? क्या क्या कह रहे थे ? कुछ मेरे बारे में तो कह नहीं रहे थे ? अरी, बताती क्यों नहीं ?

नलिनी एक साथ इतने प्रश्न ? [साँस छोडकर] बताऊँ क्या ? बोलने दो जब न ? दीदी बिलकुल ठीक है। वैद्यराज आये थे करीब दो बजे फिर। दीदी को मुस्कराते देख कर, अचरज में पड गये।

प्रेमा—तुम्हारी दीदी सब को अचरज में डाल देती है। करुणा प्रसन्न है। अच्छा हो—वह सदैव प्रसन्न रहे।

नलिनी——चाहती तो मैं भी यही हूँ कि वह सदा हँसमुख रहे। पर उसका तो स्वभाव ही कुछ विचित्र सा बन गया है।

प्रेमा—इसके लिये भी कुछ कारण होते हैं।

नलिनी—प्रोफेसर साहब कितना समझाते हैं कि इस सोने से शरीर को क्यों मिट्टी में मिलाया जा रहा है। पर कौन माने। बेचारे, हमेशा दीदी ही के विचार में पडे रहते हैं।

प्रेमा—प्रबोध बड़े अच्छे हैं।

नलिनी—सचमुच मुझे तो उनका स्वभाव बड़ा प्रिय है।

प्रेमा—और अरुण ?

नलिनी—प्रेमा! होश में हो न? कैसी तुलना कर रही हो? (उठते उठते) अरुण मेरा साथी है। मैं उसके साथ रहना चाहती हूँ। त्याग के बाद यों बे लगाम होना कितना उचित है? किन्तु इसमें तेरा दोष नहीं। यह तो उसके पीछे दबाई गई कमजोरी है जो झाँक उठती है। मुझे ऐसे त्यागियों के प्रति कोई आदर नहीं। यह त्याग, त्याग हो ही नहीं सकता। केवल दुनिया से शाबासी—धन्य-धन्य के जयघोष सुनने के लिये ऐसा बेवश का त्याग किया जाता है। मैं तो कह सकती हूँ, कि ऐसा जबरदस्ती का त्याग, त्यागी और संसार दोनों के सत्यानाश का कारण है। इसे त्याग न कहकर स्वार्थ कहा जाना ही ठीक और उचित है। गंगाजली में, कहीं का ही पानी भर देने से वह गंगाजल नहीं हो सकता।

प्रेमा— त्याग से तू क्या अर्थ लेती है?

नलिनी—त्याग से आनंद मिलता है—शांति मिलती है। उदाहरण के लिये आज की ही बात ले लो। प्रोफेसर साहब ने मजदूरों को हड़ताल न करने की राय दी। उन्हें मालूम है कि ऐसी राय से मजदूरों के आज के नेता उनके विरुद्ध रहेंगे। उन्हें सरकार का चापलूस बतायेंगे। फिर भी उन्होंने यह सलाह दी। क्यों? क्यों कि आज जैसे कदम ये उठा रहे हैं—वैसे तो किसी भी सरकार के विरुद्ध उठाये जा सकते हैं। ऐसी परिस्थिति में प्रोफेसर साहब का हड़ताल रोकने का आदेश देना,—उनका सब से महान त्याग है। परन्तु तुम्हारा त्याग—तुम्हारी कमजोरी का प्रतीक है। [प्रेमा मुस्कराती है।] तू प्रबोध को अब भी चाहती है। पर दुनिया

के भयसे वापस नहीं माँग रही है। [प्रेमा चौंकती है।] भगवान न करे- अगर दीदी संसार से विदा हो जायें—तो क्या प्रेमा प्रबोध को नहीं अपनायेगी? इसका उत्तर दे सकती हो? बोलो, क्या करोगी तब? क्या प्रबोध के रास्ते में न आओगी?

प्रेमा—बडा निष्ठुर प्रश्न पूछा है, नल्लू!

नलिनी—मरना जीना तो हमारे वश की बात नहीं। क्या तब तुम्हारा मोह प्रकट न होगा? मैं तो कह सकती हूँ कि तब प्रबोध तुम्हारा ही होगा। तुम अपना हक न छीनने दोगी। करुणा के बाद प्रबोध तुम्हारा और तुम्हारे बाद फिर तीसरे नम्बर में खडे होने वाले का। खूब अच्छा सिद्धांत है अनुशासन का। यही तो 'क्यू' ने हमें सिखाया है। नम्बर आने पर अधिकार जमाना।

प्रेमा-- तुम अधिकार से बाहर जा रही हो, नल्लू। प्रेम को तुम कैसे समझ—

नलिनी—पहले इस प्रेम का बण्डल बना कर किसी गहरे समुद्र में बहा दो! और ऐसा बहाओ कि वापस किनारा ही न मिले। प्रेम! शादी की तैयारी हुई कि प्रेम जुड गया। तलाक दिया कि उड गया! क्या खूब है? नाटक में तो प्रथम अंक एक बार ही होता है। मगर यहाँ—'प्रेम वीर' जब चाहे तब पहले अंक का पर्दा उठा देते हैं।

प्रेमा—आखिर प्रेम ने तेरा क्या बिगाडा है जो गरीब पर यों टूट पडी?

नलिनी—तुम से राजपुताने की विरांगनाओंका इतिहास तो छिपा है नहीं। वैसा प्रेम हो तो किसे अभिमान न होगा? पर ऐसे प्रेम के पीछे चिता छिपी रहती है न? कैसे हो सकता है?

प्रेमा—नलू! बहुत आगे बढ चुकी हो।

नलिनी—जब कोई पूछता है तो मैं चापलूसी नहीं जानती। वरना मुझे इन झंझटोंसे क्या प्रयोजन? आप अन्दर जा सकती हैं। दीदी अन्दर ही हैं। मगर कहे देती हूँ—करुणा का हृदय बडा कोमल है। वह सिनेमा में भी दुखान्त सह नहीं सकती।

प्रेमा—आखिर मैं भी तो करुणा की कुछ हूँ। यह जग है। यहाँ दुख-सुख सभी हैं। संघर्ष में हार दुख के साथ और जीत सुख के ही साथ आये—यह भी बात नहीं है। विजित भी प्रसन्न रह सकता है अगर उसका पक्ष न्याय की ओर हो।

नलिनी—न्याय? तुम अब भी प्रबोध को चाहती हो। मगर यह करुणा के लिये न्याय-युक्त नहीं माना जा सकता। अगर तुम ने यह त्याग-वाला दिखावा न किया होता तो यह पर्दा ही क्यों उठता? मगर कमजोरी छिपाने की आदत जो है। यह आदर्श नहीं माना जा सकता। सच तो यह है कि नारी का सब से बडा शत्रु नारी ही है। हम ही अपना काल बन बैठती हैं।

प्रेमा—मैं तेरा कहना समझती हूँ। मैं जल्दी ही ब्याह कर लूँगी।

नलिनी—किस के साथ?

प्रेमा—यह प्रश्न मेरे लिये व्यर्थ है। किसी के भी साथ क्यों न हो मैं विवाह कर लूँगी। विश्वास रख, प्रबोध करुणा का ही रहेगा। हाँ, साथ में यह भी कहे देती हूँ कि—करुणा के बाद प्रबोध केवल मेरा ही रहेगा। चाहे तू इसे मेरा दौर्बल्य समझ।

नलिनी—मैं बहुत कुछ बडबडा गयी। मैं ने यह ठीक नहीं किया।

प्रेमा—कौन कहता है—ठीक नहीं किया? याद है एक बार 'डिबेट' में तू अरुण पर कैसे टूट पडी थी? फिर आज यों पीछे हटना चाहती है अपने सिद्धान्तों से? क्यों री, तब से पहले तेरी और अरुण की कोई पहचान नहीं थी?

नलिनी—अरुण रहता तो इसी घर में, इसी पासवाले कमरे में—जहाँ आजकल रहता है। मगर हम कभी एक दूसरे की ओर आते-जाते नहीं थे। उस दिन के बाद ही हम साथी बनें।

प्रेमा—कुछ भी कहो नलू, पुरुषों के साथ इतना कठोरता का बर्ताव ठीक नहीं।

नलिनी—क्यों? तुम तो कठोरता के लिये कहती हो। मैं ने तो आज सुबह उस प्रताप का गाल लाल कर दिया। मैं अन्याय होनेपर सिसकना नहीं जानती।

प्रेमा—क्या तेरे विचारों से प्रताप इतना बुरा है कि वह सुधारा भी नहीं जा—

नलिनी—मैं किसी को सुधारने या बिगाडने के झमेले में पडना नहीं चाहती। फिर प्रताप की आदत तो उसका 'ट्रेड मार्क' बन गयी है। सावन के अन्धे को अगर हरा दीखना बंद हो जाये, तो भी शायद ही इन प्रताप महाशय को, लडकियों का स्वप्न बन्द पडे।

प्रेमा—मैं उसके सहवास में रहकर उसके स्वभाव का अध्ययन कर लेना चाहती हूँ। कदाचित् यह प्रयत्न अनुचित न होगा।

नलिनी—अनुचित? बहुत से शोकीनों को तुमने देखा होगा। ये अलबेले अपने कोट पर फूल लगाया करते हैं। कोट पर लगाने से पहले वे

उस फूल को सूँघते हैं। तो भी क्या हर नये प्रभात के लिये उन्हें नया फूल नहीं चाहिये? सच तो यह है कि वह नयापन ही उन्हें भाता है। कल का मधु उन्हें रुचिकर नहीं होता।

प्रेमा—भँवरों की तरह?

नलिनी—भँवरे इतने निर्दयी नहीं होते। वे मधु चखते उडते फिरते हैं। मगर जाते समय फूल को मसोस कर नहीं जाते। इतना ही नहीं इन अलबेलों का तो ताजापन भी हर प्रथम मिलन पर निर्भर है।

प्रेमा—कुछ भी हो—स्त्री और पुरुष को एक दूसरे पर निर्भर रहना जरुरी है।

नलिनी—प्रेम के ढकोसले के आधार पर नहीं—कर्तव्य के नाम पर साथी बन कर निर्भर रहना यथार्थ है। यही सब से बडा त्याग है। अरुण! (घडी पर दृष्टि पडती है।) अरे! अभी तक अरुण आया नहीं?

प्रेमा—आ जायेगा। इतनी उतावली क्यों हो रही हो? बैठो, भिजवाये देती हूँ। चाहती तो थी, कि तुम्हें जरा और छेडूँ। पर तुम अरुण के बिना कुछ कुछ उतावली सी हो रही हो न? इसलिये अरुण का आना ही ठीक है।

(अरुण और करुणा का प्रवेश)

अरुण—मैं आ गया हूँ। क्या सेवा है, प्रेमा?

प्रेमा—मैं नहीं, नलू चाहती है सेवा।

करुणा—नलू! तुम जानेवाली थी न कहीं? कदाचित् रतन के यहाँ। तो हो आओ न?

प्रेमा—अकेली शायद डर जाये। अरुण तुम पहुँचा आओ न इसे।

नलिनी—दोनों को बुलाया है रतन ने। वरना इस समय तो मैं अकेली ही जाती। डर लगता है किसे यहाँ?

करुणा—हाँ, जाओ अरुण, हो आओ दोनों। बेचारी बाट देख रही होगी। प्रेमा मेरे पास है तब तक।

प्रेमा—जाओ तो सही, मगर बेचारी भोली भाली लडकी को कुछ छेडछाड कर के रुला न देना। [अरुण और नलिनी एक दूसरे की ओर देखकर मुस्कराते हैं और चले जाते हैं।] कितनी अच्छी जोडी है?

करुणा—सच! मैं भी कहूँ तेरे लिये कुछ? पर जाने दो। जग ही पूछ बैठेगा—जब बरबस उसके मुँह से निकल पडेगा—इतना रुप कहाँ से उडा लायी री प्रेमा? कुछ बाकी भी छोडा है?

प्रेमा—[मुस्कराकर] डर तो शायद औरों को हो। मगर तुझे तो डरने की आवश्यकता नहीं। पहला नम्बर तो तुझे ही मिला है। तेरी एक मुस्कान मात्र मुझे मोहे लेती है।

करुणा—अगर युवक होती तो विवाह कर लेती कदाचित्!

प्रेमा—क्या खूब मन की कही? परन्तु निघोडे भगवान ने मुझे स्त्री बना दिया है न? कम से कम तुझे तो पुरुष बनाना था। पर नहीं, यही ठीक हुआ। वरना बेचारे प्रबोध का क्या हाल होता?

करुणा—प्रेमा जो है प्रबोध के लिये।

प्रेमा—हट री पगली। अपने धन को दूसरों पर वारना चाहती है? तेरा यह खिला मुखडा देख कर मैं फूली नहीं समाती री!

करुणा—आगे कहो न—बेजोड कहीं की! [दोनों हँस पडती हैं।]

प्रेमा—एक बात कहूँ? मगर ना, कुछ लजाती हूँ।

करुणा—यह कब से री ? यह तो मैं पहले पहल ही सुन रही हूँ।

प्रेमा—तू कुछ नहीं समझती। (लजाकर) मैं ने अपनी जोडी चुन ली है। (करुणा चौंकती है) बहन ! तुझे मेरी सहायता करनी होगी।

करुणा—(घबराई हुई सी) सहायता ! मुझे करनी होगी ? मैं ?

प्रेमा—क्यों नहीं ? करोगी न बहन ?

करुणा—सहायता ? हाँ करूँगी। मैं तेरे आड न आऊँगी।

प्रेमा—मेरी अच्छी बहन ! तू उन्हें पहचानती है। अब मुझे कोई चिन्ता नहीं।

करुणा—सच ! तो अब तक तुझे मेरा ही डर था ? नहीं—नहीं

प्रेमा—(मुस्कराकर) मैं ब्याह से प्रसन्न हूँ और तुम भी। तुम विश्वास रखो—मैं ब्याह जल्दी ही कर लूँगी। अभी मैं प्रताप के यहाँ जाकर आई हूँ। वे घर पर नहीं थे। मैं चिट्ठी रख कर आई हूँ। वे यहाँ आयेंगे। उनके आते ही मैं सब कुछ तय कर लूँगी।

करुणा—मैं कुछ समझ नहीं सकी। प्रताप से क्या तय करना है ?

प्रेमा - सब कुछ बताती हूँ। प्रताप को युवतियोंका बडा शोक है।

करुणा—वह तो चाहता है कि मुगल बादशहा अकबर की तरह मीना बाजार भरवाये। पर जमाना उसके साथ न होने से लाचार है बेचारा।

प्रेमा—मीना बाजार की सामग्री उसे मिल सकती है आज भी। पर अकबर की तरह नारी भेष में मीना बाजार की सैर करते वह घबराता है। वह तो प्रताप बना ही तरुणियों को हथियाना चाहता है। मैं उसे अच्छी तरह समझती हूँ। इसीलिये तो उसे अपना हाथ देना चाहती हूँ।

करुणा—प्रेमा !

प्रेमा—वह बडा रसिक है ।

करुणा—ब्याह कर रही है तू ?

प्रेमा—हाँ, बहन, युवतियों को अविवाहित रहना ठीक नहीं । वरना उसपर समाज की सदा आँखें लगी रहेंगी । मैं प्रताप से शादी करूँगी । वे धनवान हैं । युवक हैं । सुंदर हैं ।

करुणा—सचमुच ! [गंभीरता से] प्रताप सुंदर है ! युवक है ! धनवान है ! तू जानती है ! मैं तो सोचती थी कि तुम अपने प्रबोध को माँगोगी । और मैं देने के लिये तैयार—

प्रेमा—करुणा क्या कह रही हो तुम ? यह, फ्राँस या अमेरिका नहीं । पौर्वात्य दूसरों के धन की ताक में नहीं बैठता । मैं प्रबोध की ओर आँख भी नहीं उठा सकती । ऐसा करना भारतीय संस्कृति को लजाना है । हम आर्य हैं । हमारा जन्म और मरण मानवता के लिये ही है । मुझे भारतीयता पर अभिमान है । मैं प्रताप को पाकर संतुष्ट होने की आशा रखती हूँ ।

करुणा—मैं तेरे त्याग को पहचान सकती हूँ । तू भारतीय है । हर पंथ मानवता के नाम पर तेरा है । आज भी इन सब का मिश्रण गांधी मौजूद हैं । फिर भी मेरे लिये तेरा यह त्याग असह्य होगा । मैं दुर्बल हूँ, बहन ! इस बोझ से मेरा दम घुट जायेगा ।

प्रेमा—तो मैं समझ लूँ कि मुझे मेरा प्रताप नहीं मिल सकेगा ।

करुणा—प्रेमा ! क्या कह गई री ? कौन रोक सकता है तुझे तेरे प्रताप के पास जाने से । तुझे तेरा ही प्रताप मिलेगा । मैं अपने हाथों—

[प्रबोध का प्रवेश]

प्रबोध—[प्रेमा की ओर ध्यान देते हुये] करुणा ! यहाँ चली

आई तू? वैद्यराज का तो कहना है कि तुम्हें कुछ विश्राम की आवश्यकता है। पगली कहीं की! अपने ही शरीर की इतनी अवहेलना! और यह कसीदा? क्या यह भी इसी समय काढना है? करुण! इतना निर्दयी बनना ठीक नहीं अपने पर! चल उठ! स्वास्थ्य रहा तो सब कुछ हो सकता है। चल, अन्दर चल। तुझे छोड आऊँ; चल। [करुणा प्रेमा को बिना कहे ही प्रबोध के साथ अन्दर चली जाती है। प्रेमा देखती रह जाती है।]

प्रेमा—चला गया? निष्ठुर! [गला भर आता है। कोच के सहारे मुँह छिपा लेती है। धीरे धीरे सिर ऊँचा करके] पगली! (शृंगारदान के पास जाकर मुँहपर हाथ फेरती है। मुस्कराने का प्रयत्न करती है। कोच पर पड जाती है। प्रसन्न है। पडी पडी हँसती सी जान पडती है। घडी देख कर)

प्रेमा—ओ! कितनी सुस्त है यह घडी! (उदास होकर) प्रबोध कम से कम 'बैठो' तो कह जाना था। (कुछ सचेत सी हो कर) ओ! [कोचपर बैठती है। फिर उठ जाती है। मन बहलाने के लिये इधर उधर की चीजें उठाती–रखती है। प्रताप का प्रवेश]

प्रताप—नमस्ते, प्रेमा देवी!

प्रेमा—(कुछ अनमनी सी) कौन? प्रताप?

प्रताप—आपका पत्र मुझे मिला।

प्रेमा—नमस्ते! आओ बैठो! [प्रताप बैठता है।]

प्रताप—फरमाइये, क्या सेवा करूँ?

प्रेमा—आप से बहुत आवश्यक बातें करनी हैं।

प्रताप—तो चलिये न।

प्रेमा—हम यहीं बोलेंगे।

प्रताप—फिर फरमाइयेगा ! किस सेवा के योग्य समझा है मुझे ?

प्रेमा—अगर कोई लडकी आप से शादी करना चाहे तो—

प्रताप—तो बात बिल्कुल सीधी और साफ है । वह लडकी मुझे पसन्द हो । बस इतने से काम चल सकता है ।

प्रेमा—अब तक आप ने किसी भी लडकी को मन-पसन्द नहीं पाया ?

प्रताप—ऐसी कोई बात नहीं । मेरा तो कोई छन लडकियों से खाली नहीं रह पाता । और मैं इसे कुछ बुरा भी नहीं मानता । वैसे मुझे सुंदर युवतियाँ मिली हैं । मगर वे जब बिना शादी के ही हाथ लग जाती हैं [प्रेमा होठ चबाती है ।] तो फिर उनसे शादी करने से क्या लाभ ? आप बुरा न मानें । मेरा तो यही स्वभाव है । और शादी की तभी तो जरूरत पडती है । खैर ! मगर आप ये सब क्यों जानना चाहती हैं ? क्या आप का विचार प्रबोध से बदला लेने का है ? आखिर कब तक कोई सहे ? बडा अच्छा खयाल है आपका ।

प्रेमा—बलिहारी आप के दिमागे शरीफ की !

प्रताप—मैं ने गलत समझा ? तो फिर क्षमा करें । ऐसी गलतियाँ करने का तो मेरा स्वभाव सा बन गया है । अपनी कमजोरी छिपाना मैं अच्छा नहीं समझता । अगर आप यह इशारा नलिनी के लिये दे रही हैं तो मैं आप से कहूँगा कि आप निश्चित रहें । मैं ने मोतीरामजी को राजी कर लिया है । मैं नलिनी से शादी करूँगा–केवल बदला लेने के लिये । उसने प्रताप के चाँटा मारा है । देख लूँगा उसकी सारी शेखी ! हाथा-पायी करना स्त्रियों को शोभा नहीं देता । इसे स्वतंत्रता नहीं उच्छृंखलता ही कहा जायेगा । देखूँगा, वह कितने गहरे पानी में है !

प्रेमा—सोचा तो योग्य ही है। पर इक तरफा विचार है आप का! मान लीजियेगा—आप ने शादी के बाद उसे तंग किया! तो क्या वह चुप बैठेगी? वह आप को तुरन्त छोड देगी। और उसकी जैसी लडकियों के लिये यह असम्भव भी नहीं है। क्या आप के घराने की परंपरा इसे सहन कर लेगी? आप के घराने की बहु किसी दूसरे के यहाँ देखकर आप शांति से रह सकेंगे? तो फिर इस झमेले में पडने से पहले ठंडे दिल से एक बार और विचार कर लीजियेगा। मैं यह भी जानती हूँ—प्रताप का जन्म अपमान सहने के लिये नहीं हुआ है।

प्रताप—आप ठीक फरमा रही हैं।

प्रेमा—मैं यह भी मान सकती हूँ कि आप प्रबोध को नीचा दिखाना चाहते हैं। अब मैं आप से कहूँ कि हम दोनों वैवाहिक बंधन मे पड जायें तो सारे काम एकदम सादे जा सकते हैं। आप की भी इच्छा पूरी हो जायेगी और मेरा भी काम बन जायेगा।

प्रताप—क्या कह गईं आप? क्या मैं स्वप्न देख रहा हूँ? पहले तो आप से मैं ने लाख प्रयत्न करने पर भी यह नही सुना। अब ये सब क्या है?

प्रेमा—धीरज रखो, प्रताप! परिस्थितियाँ सब कुछ करवा सकती हैं। मैं सचमुच ब्याह का प्रस्ताव रख रही हूँ।

प्रताप—यह तो मेरा सौभाग्य है कि आप सी तरुणी को मै अपने पास रख सकूँगा। पर प्रबोध को—

प्रेमा—आप को पाकर मैं प्रबोध को भूल जाने का प्रयत्न करूँगी। फिर अगर मैं उसे न भी भूल सकी तो तुम्हें इससे क्या? ब्याह तो आप से कर ही चुकी हूँगी।

प्रताप—तो आप विवाह के बाद भी प्रबोध की ओर झुकी रहने की शर्त मनवाना चाहती है ?

प्रमा—कैसी बातें करते है आप ? भारतीय समाज में विवाह एक पवित्र कर्तव्य गिना जाता है । मै भारतीय नारी हूँ । अपनी मर्यादा खूब समझती हूँ ।

प्रताप—सो तो ठीक है । परन्तु मै इतना हृदय-विहीन थोडे ही हूँ जो आप को प्रबोध से छीन लूँ ? आप का हृदय ही जब आप के पास न रहे तो मै शादी करके क्या करूँगा ?

प्रेमा—आज तक तो आप शरीर के लिये ही यत्न किया करते थे ।

प्रताप—किन्तु विवाह के लिये हृदय और शरीर दोनों चाहिये ।

प्रेमा—पहले शरीर पर तो अधिकार जमा लें । सहवास से हृदय भी तो जीता जा सकता है । करुणा और प्रबोध की नहीं निभी क्या ? विश्वास रखे ।

प्रताप—प्रताप सौदर्य पर सदैव विश्वास रखता है । भला, मै आप पर अविश्वास रखूँ ? मै ने तो जो कुछ पूछताछ की—आप के हित के लिये । जिस से आप को बाद मे पश्चाताप न करना पडे । मैं तो आप को पत्नी बनाने एक पैर पर खडा हूँ ।

प्रेमा—प्रताप !

प्रताप—कितनी सुन्दर है आप !

प्रेमा—और रसिक भी ।

प्रताप—सचमुच तुम प्रेमा हो । तुम्हें पाकर मै धन्य हुआ ।

प्रेमा—यह विवाह शीघ्र हो जाना चाहिये ।

प्रताप—जब जोडी तैय्यार है तो पिंजडा बनते क्या देर लगेगी ?

प्रेमा—आप ने मोतीरामजी को वचन दिया है न ?

प्रताप— नलिनी के लिये ? (हँसकर) प्रतिज्ञा–पत्र लिख कर थोडे ही दिया है ?

प्रेमा— आप मोतीरामजी को यहीं बुला लायें । मेरे सामने ही उन्हें इनकार करें । (प्रताप जाने लगता है ।) प्रताप, जल्दी आना ! वरना मैं अकेली घबडा जाऊँगी । देखो, भूल न जाना ।

प्रताप—तुम्हें कैसे भूल सकता हूँ, प्रेमा ? आया ही समझो । (प्रताप का प्रस्थान । प्रेमा व्याकुल सी कोच पर पड जाती है । गला भर आता है ।)

प्रेमा—क्या इसीलिये नारी का जन्म होता है ? [सिसकती है । गंभीर होकर उठती है ।] नहीं—नहीं प्रेमा, तुझे अपना कर्तव्य पालन करना ही होगा । करुणा को सुखी करना है न ? फिर जल्दी कर ? तैय्यार हो— प्रताप से शीघ्र विवाह कर ले । वरना यह कमजोरी तुझे खा जायेगी । प्रेम और तेरे विवाह से कोई संबंध नहीं है । (आँसू पोंछती है ।) हाँ, अपने लिये नहीं—प्रबोध और करुणा के लिये यह शादी आवश्यक है । मैं प्रताप से ब्याह कर लूँगी । (प्रबोध का प्रवेश)

प्रबोध—क्षमा करना, प्रेमा । मुझे कुछ देर हुई ।

प्रेमा—प्रबोध ! [प्रबोध की ओर देखती है । व्याकुल सी कोच पर मुँह छिपाये पड जाती है । प्रबोध पास आता है । सिर पर हाथ रखना चाहता है । मगर यकायक हाथ वापस खींच लेता है । प्रेमा प्रबोध की ओर देखती है ।]

प्रेमा—प्रबोध ! [मुँह छिपा लेती है]

प्रबोध—प्रेमा ! (पास आकर कंधे पर हाथ रखता है) प्रेमा !

प्रेमा—प्रबोध ! (एकटक लगाये प्रबोध को देखती है । आँखें भर आती हैं ।)

प्रबोध—क्षमा करो, प्रेमा । प्रेमा, न रोओ ।

प्रेमा—मैं रोती हूँ ? (आँसू पोंछते हुए) कहाँ ? नहीं तो ! [बराबर देखती रहती है ।] प्रबोध !

प्रबोध—[दचक कर दूर हटता है] प्रेमा, न देखो यों मेरी ओर ! मुझे क्षमा करो ! करुणा के लिये—

प्रेमा—[एक ओर हटकर] प्रबोध !

प्रबोध—प्रेमा ! (पास आता है ।)

प्रेमा—मुझ से दूर रहो, प्रबोध । प्रबोध दूर रहो मुझ से । [वह पीछे हटती है । प्रबोध आगे बढता है ।] तुम्हें कुछ हो गया है, प्रबोध ! नहीं, नहीं, मुझे ही कुछ हो गया है । प्रबोध, तुम जाओ । जाओ ! करुणा पुकार रही है—तुम्हें । वह तुम्हारे बिना अनाथ है । जाओ, प्रबोध !

प्रबोध—प्रेमा आज—

प्रेमा—प्रबोध, तुम्हें मेरी सौगन्ध है । अन्दर चले जाओ । करुणा ! हाँ, करुणा के पास चले जाओ । तुम करुणा के हो । जाओ, नहीं तो मुझे बडा दुख होगा । इस तरह मेरी ओर क्यों देख रहे हो ? तुम्हें मेरी शपथ है । अपने लिये नहीं तो करुणा के लिये चले जाओ, प्रबोध । (प्रबोध सचेत सा होता है । धीरे धीरे अन्दर चला जाता है ।) चले गये ! अच्छा किया । [आँसू पोंछकर] तुम्हें करुणा का ही रहना चाहिये । मैं अपने प्रबोध को वापस नहीं माँग सकती । [आँसू पोंछती है ।]

(अरुण का प्रवेश)

अरुण —न रोको प्रेमा इन्हें। आँसू तो बहने के लिये ही होते हैं। फिर तुम्हारे आँसू तो तुम्हें पुरस्कार रूप में मिले हुये हैं। न मिटाओ इन्हें। आँधी को देखकर भी आँखें बंद की जा सकती हैं। किन्तु यह तो वर्षा है। बन्द आँखें भी खुल जाती हैं इस समय!

प्रेमा—नहीं, कुछ नहीं। आँखों में कुछ गिर पडा था। मसल दिया इसलिये—

अरुण—मसल देने से ही तो आँखें चू पडती हैं। फिर इन्हें चूने दो न। क्यों दबाये रखने का प्रयत्न करना चाहती हो?

प्रेमा—सच, आँखों में धूल गिर पडी थी। बेदर्द आँसू कहीं से टपक पडे।

अरुण—तो फिर मेरी आँखोमें धूल डालकर—'आँखें लाल' देखना चाहती हो? अपने त्याग को जग से कैसे छिपा सकती हो तुम? प्रेम को जग की आँखों से बचाने के लिये तुमने अपने आप को निछावर कर दिया। अब और क्या चाहती हो? यह तूफान कैसा? अब तुम्हारे पास उडा देने योग्य रह भी तो क्या गया है? क्यों अपने पर यों अन्याय ढा रही हो?

प्रेमा—अरुण, लोग कहते हैं—सच्चे त्याग से सुख शांति मिलती है।

अरुण—हाँ, सुना है। मालूम होता है कि तुम आज कल अपने पर का विश्वास खो चुकी हो!

प्रेमा—मैं ने वह त्याग किया है—जो मैं सह नहीं सकती। नलू ने यही तो कहा था। मेरे त्याग का फल करुणा क्यों भोगे? मैं यह नहीं होने दूँगी।

अरुण—तो तुम प्रबोध से विवाह करना चाहती हो अब? प्रेमा!

बहन ! अगर इस ओर तू ने कदम उठाया तो मैं अपने हाथों तेरा गला घोट दूँगा !

प्रेमा—मैं ने करुणा को दुखी किया है। मेरा गला घोट दो, अरुण ! बडा उपकार होगा। पर ठहरो ! मै ही अपना गला दबा लूँगी। मैं प्रताप से ब्याह कर लूँगी।

अरुण—अरुण गाय को कसाई के हाथों बेचे इतना क्रूर, लोभी नहीं।

प्रेमा—प्रेम के ब्याह बहुत होते हैं। और मैं भी वही कर रही हूँ। उसी सिध्दान्त पर—

अरुण—तुम प्रताप से प्रेम नहीं करती हो।

प्रेमा—मगर प्रबोध से तो करती हूँ न ? करुणा के प्रेम के लिये मुझे यह ब्याह—

अरुण—मैं नहीं समझा !

प्रेमा—मैं तो नहीं चाहती कि कोई इसे समझे। जब मै कुमारिका हूँ तो जग क्यों न समझे कि मैं प्रबोध की आशा में ही हूँ। करुणा—

अरुण—करुणा भाभी तुम्हें देवी समझती है।

प्रेमा—यही तो बुरा है। वह बडी कोमल हृदय की है। जब से प्रताप ने उसे मेरी प्रेम-कहानी सुनाई है, वह बेचैन है। वह समझती है कि वह मेरे सुख से खेल रही है। उसने माना है कि उसका जीवन मेरे जीवन पर खडा है। वह मेरी इस कृपा को लौटाना चाहती है। अगर मैं कुँवारी ही रहूँ तो वह अपनी बली देकर मेरा धन मुझे लौटाने का प्रयत्न करेगी। मैं इस पहेली को सुलझाने के लिये प्रताप से ब्याह करूँगी।

अरुण— इस विवाह के बाद करुणा भाभी सोचेगी—अब प्रेमा सुखी है। उसका ब्याह हो चुका है। प्रबोध अब उसका ही है। प्रेमा का तो सब कुछ अब प्रताप ही है। क्यों, यही बात है न? मगर प्रेमा, यह तुम्हारा भ्रम होगा। भाभी का हृदय इस से भी अधिक गहरा है। वह हृदय की पकड़ बड़ी कुशलता से कर सकती है। ओर तेरा यह प्रताप के साथ का विवाह! (सकर) प्रेमा! एक मजेदार बात कहूँ? 'यही दुनिया! इसी की बात! एक ने कहा—नलिनी प्रबोध से प्रेम करती है! प्रबोध नलिनी से ब्याह करना चाहता है! कारण अब करुणा मुरझाया फूल ही रह गई है। उसके पिता कुछ ओर ही सोच रहे हैं। उस कहनेवाले के अनुसार नलिनी का ब्याह उसी धनी के साथ होना ठीक जँचता है—क्यों कि पिता की मरजी जो है। ओर भी उसने कहा कि—

प्रेमा—मैं सब जानती हूँ। यह कहनेवाला है—वही प्रताप। मैं ठीक कह रही हूँ न?

अरुण—तो भी तुम प्रताप से ब्याह करोगी?

प्रेमा—नलिनी कहती है—विवाह केवल वासना—तृपि का ही साधन नहीं। आर्य संस्कृति में यह बंधन पवित्र कर्तव्य पालन के लिये माना गया है।

अरुण—नलिनी ने कहा? अरी, उसका क्या, वह तो कहती है—नारी का अपमान शक्ति का अपमान है। नारी तीनों—ब्रम्हा, विष्णु—महेश की प्रतीक है। इसे बाजारू भावलियाँ बनाकर खेलने वालों का नाश दूर नहीं है। बस, क्या क्या गप्पें हाँकती है कि पूछो मत। उसके फंदे में न फँस जाना। वह तो पगली है।

प्रेमा—इस पागलपन में भी तो आखिर कुछ है न—जो तुम्हें खींचे जा रहा है। उसे कहाँ छोड आये हो?

अरुण—बाहर खडी गप्पें हाँक रही है। पर प्रेमा, प्रताप के साथ ब्याह करने से पहले एक बार और सोच लो।

[मोतीरामजी का प्रवेश]

मोतीराम—खूब सोच लिया। ये लडकियाँ आसमान के तारे तोडने लग गई हैं। पचास बार कहा—अन्दर चल। जरूरी बातें करनी हैं। मगर उन के कानों पर जूँ तक नहीं रेंगती। क्या गप्पें चल रही हैं—न जाने इतनी जरूरी! बडों का कहना न मानने की कसम खा रखी है इन—

प्रेमा—प्रणाम पिताजी!

मोतीराम—जीती रहो बेटी। देखा, यह नलिनी अभी नहीं आई। कैसी गप्पें हाँक रही है—कि पिता से बातें कहने–सुनने की उसे फुरसत ही नहीं।

अरुण– नलिनी को यों नहीं करना चाहिये। आखिर पिताजी भी तो—

मोतीराम—अरुण! तुम यहाँ क्यों? सुबह मैं ने कहा सो याद नहीं क्या? सुनो, नलू से तुम्हारा मिलना जुलना बन्द है। फिर तुम उसके कमरे में पैर क्यों रखते हो?

अरुण—ओह! वह कमरा नलिनी का है। क्षमा करें। ये नालायक शरारती पैर आदत से लाचार हो गये हैं। मगर ऐसी लाचारी बिलकुल ठीक नहीं।

मोतीराम—जी, आगे से यह बहानेबाजी न चलेगी। प्रेमा, अभी तक नहीं आई, नलू?

अरुण —बुला लाऊँ ?

मोतीराम—बिलकुल नहीं। और सुनो—मैं नलिनी का ब्याह प्रताप से करनेवाला हूँ। तुम्हारा यों उसके साथ रहना प्रताप को अच्छा न लगेगा। मैं सबकुछ अभी नलू के कानों तक पहुँचाना चाहता हूँ। प्रेमा, देख न जरा, वह कब आयेगी—न जाने ?

[नलिनी का मुस्कराते हुये आना]

नलिनी—अरुण! अभी तक यह कमरा न छोड़ सके तुम ? [मोतीराम प्रसन्न होते हैं !] कहिये पिताजी, कौन सी आवश्यक बातें कहनी थी मुझे ?

मोतीराम—मैं तेरा विवाह रचना चाहता हूँ। जल्दी, बहुत जल्दी।

नलिनी—क्यों, क्या आप मुझ से ऊब गये हैं ?

मोतीराम—लो सुन लो, बाप अपनी बेटी से ऊबा जाता है। नहीं, तू ही मुझ से ऊब गई है। अरी पगली! अब तू इतनी बड़ी हो गयी है न ?

नलिनी—तो क्या हुआ ?

प्रेमा—समाज जवान लड़कियों को कुँवारी नहीं देख सकता।

अरुण—और देखे भी तो क्यों ? बड़ी होनेपर लड़कियाँ नटखट जो हो जाया करती हैं।

मोतीराम—अच्छा ही हुआ जो आप के पल्ले यह नटखट नहीं पड़ रही है। नलू, मैं तेरा ब्याह प्रताप के साथ तय कर आया हूँ।

नलिनी—मेरा विवाह! [हँसकर] प्रताप के साथ ? प्रताप विवाह करना जानता है ? वह तो विवाह का नाम शायद ही जानता हो।

[प्रताप का प्रवेश]

प्रताप—यह तो प्रताप आज ही दिखा देगा।

नलिनी—सुना अरुण ! प्रताप ऐसे मामलों में बड़े वीर हैं।

अरुण—सो तो प्रताप प्रसिद्ध हैं ही। मगर हम तो बड़ों के सामने नहीं बोल सकते।

मोतीराम—बड़ी अच्छी बात है। आप मुँह बंद ही रखें! प्रताप—

नलिनी—प्रताप ! पिताजी का कहना है कि शादी के पहले जरा मुँह धो आइयेगा।

प्रताप—जबान आ गई है शायद ?

मोतीराम—नलू ! बेटी, यों नहीं बोलना चाहिये।

प्रताप—यह मेरा अपमान है।

अरुण—आप ठीक फरमाते हैं। अपमानित होकर पलभर भी ठहरना ठीक नहीं।

मोतीराम—तुम चुप रहो।

प्रेमा—प्रताप, चलो हम चले यहाँ से। मोतीरामजी क्षमा करें। प्रताप, प्रेमा से विवाह करेंगे। हाँ, नलिनी के चरित्र पर के प्रकाशित आरोप वे वापस ले लेंगे। चलो प्रताप !

[प्रबोध का प्रवेश। प्रेमा और प्रताप जाने लगते हैं।]

प्रबोध—प्रेमा ! क्या करुणा का कहना ठीक है ? तू प्रताप से ब्याह करेगी ?

प्रताप—आपको तो आश्चर्य हो रहा है !

मोतीराम—मुझे भी तो अचम्भा हो रहा है न !

प्रताप—यह देख लीजियेगा—प्रेमा ही तो आप को सब कुछ बता रही है। प्रबोध बाबू! आप को दुख है। पर मैं क्या कर सकता हूँ! [हँसकर] प्रबोध सोचते थे—जग को फँसा रहे हैं। मगर खुद हाथ मलते रह गये। प्रेमा तो आप की ही है न? करुणा को चख ही लिया। अब हड़प लो नलिनी को।

अरुण—(क्रोधसे) प्रताप!

मोतीराम—(क्रोधसे) प्रताप!

प्रताप—आप अभी इस क्षेत्र में बुद्धे नहीं हैं। प्रबोध, अब तुम्हें प्रेमा नहीं मिल सकती। चाहो तो नलिनी पर हाथ साफ करो।

अरुण—नीच! (प्रबोध अरुण को रोकता है।)

प्रताप—(हँस कर) प्रबोध ने प्रेमा खो दी। अब तुम्हें नलिनी खोनी है। अरुण! भोले हो तुम। चलो, प्रेमा। (प्रेमा आगे बढ़ती है।)

प्रबोध—प्रताप के हाथ सौंप ने से पहले मैं प्रेमा का गला घोंट दूंगा। (वह आगे बढ़ता है। करुणा का प्रवेश।)

करुणा—अरुण! [अरुण रुक जाता है।] प्रेमा! इधर आओ। प्रेमा, मैं ने खूब सोच लिया है। तू मुझे सुखी करने के लिये यह ब्याह कर रही है न? इस विवाह में प्रबोध की सुख-ग्रंथी बंधी है न? तो फिर सुन, करुणा क्या चाहती है? प्रबोध क्या चाहता है? जरा डाल दृष्टि अपने भैय्या प्रबोध पर। तेरी भाभी करुणा यह कैसी सह सकेगी? देख, तेरे भैय्या की आँखें क्या कह रही हैं? कुछ देख सकी? देख! (प्रेमा देख कर सिर नीचा कर लेती है।)

प्रबोध—प्रेमा!

प्रेमा—(धीरे से) भैय्या!

करुणा—बहन ! [प्रेमा व्याकुल सी करुणा से लिपट जाती है ।]

नलिनी—(दर्पण प्रताप के सामने रखकर) जरा अपना मुँह तो देख लो [प्रताप गुस्से में होता है ।]

प्रताप—नलिनी ! कुछ मर्यादा—(नलिनी मुस्कराती हुई अरुण की ओर तेजी से बढती है । उसे मुँह बिगाडकर चिडाती हुई अन्दर की ओर भागती है । अरुण उसका पीछा करता है । दोनों का अन्दर प्रस्थान ।)

प्रेमा—[प्रताप की ओर देखती है । प्रताप गुस्से में जाने लगता है । बढकर ।] प्रताप !

मोतीराम—करुणा ! तेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं है बेटी । चल, अन्दर चल ! (मोतीराम करुणा को अन्दर ले जाता है । प्रबोध उदास, व्यग्र वहीं खडा रहता है ।)

प्रेमा—[व्याकुल सी प्रबोध की ओर बढकर ।] प्रबोध ! [रुक जाती है । प्रबोध सिर झुकाये धीरे धीरे अन्दर निकल जाता है । प्रेमा मूर्तिवत् खडी रहती है ।] चले गये ? [नेपथ्य में जोरों का अट्टहास होता है । प्रेमा व्याकुल होती है । कानोंपर हाथ रखती है और तेजी से कोच पर जा पडती है ।—रोती है । कोई गाता है—

रोती है ? रो – रो, तनमन सर्वस्व नोंच।
आँसू बहे तो, जग की हँसी से पोंछ ॥

यवनिका पतन

– समाप्त –